ISSN : 2321-3922
अक्टूबर – 2022
RNI-BIHHIN05394
वर्ष – 8 अंक–30

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)
अक्टूबर-दिसम्बर- 2022
प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :
दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–8, अंक–30

सम्पर्क : दयानन्द जायसवाल

मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जनवरी 2023 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रमणिका

1. संस्थापक की कलम से		दयानन्द जायसवाल	5
2. समीक्षा	अस्तित्व की तलाशी कविता : अनुभवों की बयानबाजी	डॉ. अरुण कुमार वर्मा	6
3. समीक्षा	नई परिभाषाएँ गढ़ती कविताएँ–	अरविन्द अवस्थी	8
4. कविता	मन सोचता है कि उदास न हो–	सुभाषचन्द्र झा	9
5. समीक्षा	धूप में अलाव सी सुलगती रही रेत पर–	राधेलाल बिजधावने	10
6. समीक्षा	प्रेम का रंग नीला–	डॉ नीलोत्पल रमेश	11
7. कविता	मैं कविता हूँ	समीर उपाध्याय	12
8. समीक्षा	गीतों की जन्म कुण्डली : टूटेंगे दर्प शिलाओं के	डॉ. रंजना गुप्ता	13
9. कविताएँ	घर रिमोट से साफ नहीं होता, समझ में नहीं आता, सच बताना	नीलम सिंह	14
10. समीक्षा	कौमों के सहअस्तित्व और ऐतिहासिक सत्य की पड़ताल करता उपन्यास	डॉ.शोभा जैन	15
11. गीत	चलो बात कोई नई अब सुनाओ	नीरज नीर	15
12. समीक्षा	दर्द की दास्तान : बदले परिवेश	डॉ. वीरेन्द्र झा	16
13. कविता	फट रही हैं परतें	ज्ञानीचोर (शोधार्थी)	16
14. कविता	चल राहगीर	नीतू कुमारी	16
15. समीक्षा	भारतीय राष्ट्रवाद का क ख ग	डॉ. के.सी. अजय कुमार	17
16. समीक्षा	तुम भी नहीं : नए अंदाज की तहरीर	धर्मेन्द्र गुप्त	18
17. कविताएँ	सुसंधान चरित पर तेरे, अम्मा की सुध, जल रहा जल	अनामिका सिंह 'अना'	19
18. समीक्षा	फिर फिर लौटेंगे स्पार्टकस बनकर	प्रेमनन्दन	20
19. कविताएँ	सालमारी उवाच, प्यारी पृथ्वी	डॉ. संजय सिंह	22
20. आलेख	प्रेमचन्द : हम दो हमारे दो	डॉ. कमलकिशोर गोयनका	23
21. लघुकथा	पान	नीना सिन्हा	24
22. आलेख	नारी चेतना का अस्तित्व	चन्द्रकान्ता अग्निहोत्री	25
23. कविता	तनाव में	शैलेन्द्र शरण	27
24. आलेख	मीरा से तसलीमा तक की खबरनबीस नासिरा शर्मा	डॉ. अरुण तिवारी 'गोपाल'	28
25. लघुकथा	सूखा पौधा	डॉ. दलजीत कौर	30
26. आलेख	घनन घनन घन	देवेन्द्रराज सुथार	31
27. आलेख	रचना में सत्य का प्रकाशन	डॉ. अमर सिंह बधान	32
28. आलेख	बेमोल नहीं : अनमोल बेटियाँ	नाजरीन अंसारी	34
29. कहानी	कैसे हो चन्दन	अंजना वर्मा	35
30. कहानी	पशुपतिनाथ	डॉ. रंजना जायसवाल	39
31. कविता	सम्भावनों का विस्तृत होता आकाश	देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव	39
32. कहानी	इत्र में भींगी हथेलियाँ	विनीता राहुरीकर	40
33. कहानी	राष्ट्र प्रेम	डॉ. संतोष साहू घल्डे	42
34. गीतें		संदीप सरस	43
35. कहानी	आपदा में अवसर	सुनीता पाठक	44
36. हास्य–व्यंग्य	लोन ले लो लोन	मदन गुप्ता सपाटू	46
37. कहानी	कैक्टस	रानी श्रीवास्तव	47
38. लघुकथा	प्यार का बँटवारा नहीं	सतीशचन्द्र मिश्र 'कोबरा'	48
39. लघुकथाएँ	धुलाई की बख्शीश	सत्य शुचि	49
	किस्मतवाले, प्लास्टिक झाड़ू.		49
40. लघुशोध	हिन्दी भाषा और वैज्ञानिक स्वरूप	शंकरलाल माहेश्वरी	50
44. समीक्षा	मरजीना : जेन्नी शबनम	दयानन्द जायसवाल	52

बदल रहा है अर्थ

बदल रहा है अर्थ
आज हर संबोधन
आज चाँदनी में
मिल रहा उजास नहीं
शीतल जल पीकर बुझ पाती
प्यास नहीं
सुना–सूना सा लगता है
अब घर–आँगन
नहीं हवा की छूअन
फूल में खुशबू है
और प्रकृति में नहीं
रंग का जादू है
है अपनों के पास
नहीं अब अपनापन
उत्सव त्योहारों में भी
उल्लास नहीं है
और दिखा
नीला खाली आकाश
और नहीं है तो
कजरी से गूँज रहा सावन

नचिकेता

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

साहित्य में समाज की विविध प्रकार की गतिविधियों का अंकन होता आ रहा है। देश, राष्ट्र, समाज तथा विश्व की स्थिति में साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। समाज में जो घटित होता है, उसे साहित्यकार अपने साहित्य में चित्रित करता है। मानव–जीवन से अलग साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। साहित्यकार का लोककल्याण 'स्वान्तः सुखाय' न होकर 'बहुजन हिताय' बन जाता है। साहित्य का स्रष्टा समाज का ही एक व्यक्ति होता है, चाहे वह कवि या लेखक हो। वह समाज में प्रचलित परंपराएँ, रूढ़ियाँ, आचार–विचार, नया व्यवहार से बँधा होता है। यही कारण है कि इन्होंने अपना जीवन जिस समाज के परिवेश में बिताया है, उसका ही अनुभव साहित्य में झलकता है।

साहित्य मनुष्य के सुख–दुःख, आशा–आकांक्षाओं से जुड़ा होता है। यह मनुष्यों की आंतरिक वेदनाओं की अभिव्यक्ति भी व्यक्त करता है। अब समग्र बौद्धिकता एवं तार्किकता के माध्यम से विश्व के सभी दर्शन और अनुभूत्याधारित विकसित धर्म जीवन की दशा–दिशा के निर्धारण का समाधान नहीं कर सके, तब साहित्य ही इसके दिशा–निर्देश का बीड़ा उठाया। इसका जीवन से इतना गहरा संबंध है कि यह अनायास ही जीने–योग्य बना देता है, हम सबके मर्म को समझकर उसकी गरिमा को समझ सकते हैं और अनुभव करके अपना जीवन सफल बना सकते हैं।

वैश्वीकरण के इस दौर में भाषा में बदलाव, जीवनमूल्यों में बदलाव और साहित्य में भी बदलाव दिखाई देने लगा है। समकालीन साहित्य में कवियों और लेखकों ने इस बाजारवादी संस्कृति के दर्शन अपनी कृतियों में कराये हैं। प्राचीनकाल से लेकर आजतक साहित्य में अनेक तरह के बदलाव होते आये हैं। आज वर्तमान समय में छोटी–छोटी वस्तु पर वैश्वीकरण का प्रभाव दिखाई देने लगा है। इन सारी घटनाओं से साहित्यकार भी अछूता नहीं रह पाये हैं। प्राचीनकालीन, मध्यकालीन और आधुनिक साहित्य से आज हटकर साहित्य में एक प्रकार की बाजारवादी संस्कृति पर लेखन का दौर शुरू हुआ है, परन्तु आज भी साहित्य से यही अभिप्रेत है कि साहित्य वह है, जो समाज परिवर्तन में मौलिक भूमिका अदा करे। साहित्य में शांति–सद्भाव की संस्कृति का विकास भौतिकतावादी मूल्यों की स्थापना में सहायक सिद्ध हो सकता है। भारतीय आधुनिकता पाश्चात्य आधुनिकता से जटिल रूप में जुड़े होने के कारण सांस्कृतिक और मूल्य–विमर्श बाधित हुए हैं। जबकि साहित्यकार को सच्ची सुखानुभूति सत्– साहित्य सर्जना और साधना में होती है, जो साहित्यकार को अपनी गरिमा का मान कराता है।

आज के परिवेश में विडम्बना यह है कि भारतीय स्वर्णिम संस्कृति की अलौकिकता को त्यागकर पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में मानव अपने अस्तित्व को तलाशने की कोशिश कर रहा है। विगत कुछ दशक से पाश्चात्य संस्कृति भारत पर इतनी हावी हो गयी है कि सम्पूर्ण परिवेश प्रभावित हो गया है। साहित्य जितना अधिक सत्यं शिवं और सुन्दरम् की अभिव्यक्ति में मुखर होगा, वह उतना ही अधिक जीवन्त होगा तथा राष्ट्रोपयोगी या समाजोपयोगी होगा। साहित्य की वैचारिक शृंखलाओं में आज नई–नई शृंखलाएँ जुड़ती जाती हैं, नई–नई शाखाएँ फूटती जाती हैं और पूर्व स्थापित मानव–मूल्यों और स्थापनाओं में समय, स्थान एवं समाजानुकूल परिवर्तन होते रहते हैं। अतएव स्वस्थ विचारों की शृंखला ही सत्–साहित्य सर्जना कर सकती है। साहित्य सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण के इस वातावरण में नैतिक मूल्यों, जीवनादर्शों से ही समन्वित मौलिक और मंडित साहित्य सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक बन सकता है। जनजीवन की भाँति साहित्य के जीवन में भी अराजकता की स्थिति बहुत खतरनाक वस्तु है। आज आलोचना में सबसे बड़ी आवश्यकता है कि पौर्वात्य और पाश्चात्य के ग्राह्य मानदंडों में स्वस्थ एवं संतुलित समन्वय द्वारा साहित्य और जीवन आस्थावाद तथा आनंदवाद का पावन संचार करे। आधुनिक–सौंदर्यबोध की दुहाई देकर जीवन एवं साहित्य को निराशा और अतिभोगवादी की अन्य तिमिस्रामयी गुहाओं में धकेलना श्रेयस्कर नहीं होगा।

आधुनिक बोध किसी भी प्रगतिशील साहित्य की ऐतिहासिक अनिवार्यता है, क्योंकि कोई भी साहित्यकार अपने परिवेश से कटकर युगजीवन रहस्यों के प्रति आँखें नहीं मूँद सकता, किन्तु परिवेश को विस्मृत कर पाश्चात्य परिवेश की मृग–मरीचिका में भटककर वैज्ञानिकता और आधुनिकता के बोध की आड़ में अपनी मूल्यवान परंपराओं से सर्वथा संबंध विच्छिन्न कर तथा समस्त मानवमूल्यों से दूर होना नितांत अवांछनीय है। बाह्य–प्रभावों को आत्मसात् करने के बाद भी हमें हिन्दी में मौलिकता, आत्मीयता और उत्कर्षविधायकता की शक्तियों को बनाये रखना होगा।

हिन्दी साहित्य में पत्रिकाओं का समृद्ध संसार है, किसी भी पत्रिका की छवि उसमें प्रकाशित होनेवाली रचना की गुणवत्ता एवं उसकी प्रस्तुति आदि को लेकर उनका प्रभाव देखा जाता है। 'सुसंभाव्य' भी इन्हीं पत्रिकाओं में से एक है, जो निरंतर अपनी साधनाओं की साहित्यिक यात्रा का दसवाँ वर्ष पूरा कर ली है। इसमें हिन्दी साहित्य की अनेक विधाएँ पल्लवित और पुष्पित हुई, जिसमें आप साहित्यकारों और सुधी पाठकों का भरपूर सहयोग मिलता रहा। आपका हार्दिक आभार व सस्नेह शुभकामनाएँ।

समीक्षा

अस्तित्व की तलाशी – कविता : 'अनुभवों की बयानबाजी'

डॉ. अरुण कुमार वर्मा
प्रवक्ता (हिन्दी) पदमी, मंडला, (मप्र)
बेलहरामऊ, राजाबाजार, जौनपुर (उप्र)
मो. 9754128757

'अनुभवों की बयानबाजी' कविता संग्रह माला सिंह जी का अनुभवों की यात्रा का संग्रह है। यह संग्रह 1918 में अदिति प्रकाशन, भुवनेश्वर से प्रकाशित हुआ है। माला सिंहजी का यह पहला काव्य संग्रह है। इसमें इनके लंबे अंतराल के जीवन अनुभवों को स्थान मिला है। संग्रह की दिशा समाज, घर, परिवार तथा धार्मिक मान्यताओं में स्त्री अस्तित्व और मानवीय मूल्यों को तलाशने की ओर अग्रसर है, जिससे समाज में मानवता को स्थापित किया जा सके। कवयित्री विभिन्न विभेदों में मानवीय करुणा की तलाश करती है। इस काव्य संग्रह में कुल 42 कविताएँ हैं, जो पाठक को संवेदना के गहरे तल की ओर ले जाना कवयित्री की आकांक्षाओं को साकार करती है।

'अनुभवों की बयानबाजी' कविता संग्रह जहाँ एक ओर स्त्री सरोकारों के साथ आगे बढ़ता है, वहीं दूसरी ओर मानवीय करुणा की स्थापना को लेकर तत्पर है। संग्रह की कविताओं में कहीं भी घुमाव नहीं है, जो इन्होंने अनुभव किया, उसे सीधे और सरल तरीके से अपने अनुभवों को बेबाकी से व्यक्त किया है। सामान्यतः रचनाकार या तो समाज से डरता है या धर्म के पैरोकारों से, लेकिन कवयित्री किसी से न डरते हुए अपना दृष्टिकोण रखा है। कवयित्री प्रस्तुत संग्रह में स्त्री अधिकारों को लेकर संजीदा है। ज्यादातर कविताओं में स्त्री अधिकारों के हनन पर पक्ष रखने का काम किया गया है। इसलिए सर्वप्रथम उसी पक्ष को स्पष्ट करना ज्यादा अच्छा होगा। माला सिंह जी की बातों को स्वीकारने का तर्क इसलिए प्रबल हो जाता है कि यह इनकी स्वानुभूति है। 'मेरा घर कौन' कविता स्त्री अधिकारों को लेकर चिंतित है। सबके लिए जीती हुई औरत उसका अपना तो कुछ भी नहीं होता–

''औरत का अपना कोई घर नहीं
या तो पिता का घर है या तो पति का या बेटे का
औरत का अपना कुछ भी नहीं
न नाम, न वजूद
————————
अपमानों को दिल में रख मैं एक घर बनवा रही हूँ
और उसपर अपने इकलौते बेटे का नाम लिखवा रही हूँ
मेरी आठ बरस की बेटी रोते–रोते पूछती है
माँ! इस घर पर मेरा नाम क्यूँ नहीं है?''1 (उसी पुस्तक से पृ.24)

'अंतिम मौत' कविता में कवयित्री एक स्त्री के गीत को सात रूपों में दर्शाती है। उसे जीवन में सात बार मरना पड़ता है। प्रथम जब वह लड़की के रूप में पैदा होती है, दूसरी जब गरीब पिता बाइसहवें जगह मेरी शादी तय कर पाते हैं, तीसरी बार जब पति द्वार घर से निकाल दी गई थी, चौथी बार तब मरी थी, जब उसने कन्या को जन्म दिया था, पाँचवीं बार तब मरी थी, जब वह विधवा हो गयी थी, छठी बार तब मरी थी, जब विधवा होने पर सभी ने उसपर बुरी नजर रखी थी, सातवीं बार तब मरी थी, जब धन और शरीर दोनों से अक्षम हो गयी थी। यह कविता समाज के सच को बयां करती है और हमारे सभ्य समाज की पोल खोलती है। कवयित्री 'उपलब्धियाँ' कविता में महिला दिवस के बहाने स्त्री के शोषण को आवाज देती है। पूरी कविता संपूर्ण भारतीय समाज में अलग–अलग क्षेत्रों के महिला शोषण की अभिव्यक्ति करती है। एक उदाहरण देखिए–

''तीस फिल्मों में और ग्यारह सचमुच में
निर्वस्त्र की गई सड़कों पर आज ही
जी हाँ आज ही
आज महिला दिवस है।''2 (उसी पुस्तक से पृ.32)

कवयित्री का विरोध 'वर नहीं शाप' कविता में उभरकर सामने आता है। वह राम जैसे आदर्श वर को नकार देती है। उसका मानना है कि राम कितने भी बड़े आदर्शवादी क्यों न हों, लेकिन उन्होंने सीता के साथ न्याय नहीं किया। उन्होंने भी उसी समाज का पक्ष लिया जैसा वह करता आ रहा है। इसलिए कवयित्री ने राम जैसे वर की चाहत न करते हुए फिल्मी हीरो जैसे पति को स्वीकार करती है। राम को सही ठहराने के पक्ष में बहुत सारे तर्क हो सकते हैं। उन्होंने मर्यादा का पालन करने के लिए पत्नी का त्याग किया; परन्तु सीता के साथ अन्याय तो हुआ ही और उसी अन्याय का आज भी आदर्श माना जा रहा है। इस कविता का उदाहरण देखिए–

''जब एक फिल्म की नायिका को
कुछ दुष्ट जन उठा ले जाते हैं
और व्यभिचार करके छोड़ देते हैं
तब फिल्म नायक उसे घर लाता है
समाज के कहे से बेपरवाह
उसके आहत तन–मन पर मरहम लगाता है
तब मुझे सीता की अग्नि परीक्षा याद आई थी
राम ने सीता के कहे पर यकीन न कर उसे
अपनी पवित्रता साबित करने को कहा
माँ! मैं राम नहीं, उस हीरो जैसा पति चाहती हूँ अपने लिए।
जो मेरी बात पर, मेरे प्यार पर विश्वास करता हो।''3
(उसी पुस्तक से पृष्ठ 54)

विवेच्य संग्रह में सिर्फ स्त्री अधिकारों की ही बात नहीं की गई है, बल्कि स्त्री की दुर्दशा के कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है। किस तरह से गरीबों के बड़े–बड़े सपने बाजार और टी.वी. सीरियल की भेंट चढ़ जाते हैं। सौंदर्य प्रसाधन की वस्तुएँ और भौतिकता की भेंट चढ़ जाती है हमारी शिक्षा व्यवस्था। विकास के युग में गरीबों के घरों में अब कलेक्टर, डॉक्टरनी और दारोगा बनने के सपने देखने बंद हो गये हैं। उनका सारा श्रम घर की चीजें जुटाने में ही समाप्त हो जाता है। यही बाजारवाद है। बाजार लोगों की जरूरत पर काम आता है, परन्तु बाजारवाद विज्ञापन के द्वारा जरूरत पैदा करता है। यह दूरदर्शन के माध्यम से हमारे घरों में घुसाया जा रहा है। इसपर सूक्ष्मता से विचार करने की आवश्यकता है। 'विकसित से विकासशील होना' कविता में कवयित्री ने ऐसी ही लड़की की कहानी को अभिव्यक्ति दी है–

''बाजार पुनः हाबी हो गया
और वो बताने लगी और मैं सोचने लगी कि
गरीब भी–खुश, मोबाइल, घड़ी, सलमान–करीना
जैसे कपड़े और टी.वी. देखकर

सब खुश! अब झोपड़ी में
कोई कलेक्टर बिटिया सा दारोगा बेटा, डॉक्टरनी बेटी
बनने का सपना नहीं देखा जा रहा
देखा जा रहा बस एकता कपूर
के सीरियल के हीरोइन जैसा होना
साड़ी लेने की ललक
और इस ललक में आरती, काजल, मोमती
सभी में होड़ लगी है
और भी निपुण काम करनेवाली बनने का।''4 (पृ. 78)

'अनुभवों की बयानबाजी' संकलन में लैंगिक विभेद को लेकर और कविताएँ लिखी गयी हैं। माला सिंह जी ने एक–एक असमानता स्थिति को बहुत ही बारीकी से देखा, समझा और अनुभव किया है। 'चेतावनी' में वे लिखती हैं कि रावण के इस युग में कोई राम भी तो नहीं, जिसके स्पर्श से फिर पत्थर से नारी बन सकेगी, 'अबला जीवन हाय' में सोवती जी की 'जिन्दगीनामा' को हर महिलाओं का जिन्दगीनामा माना है। भ्रूणहत्या को लेकर भी कवयित्री सचेत है। 'एक अजन्मी की असफल गुहार' में उस दर्द का बहुत ही मार्मिक चित्रण हुआ है। 'मजबूर की प्रार्थना' में एक लड़की के पिता के दर्द को उकेरा है। 'बोलते शब्द' में इन्होंने इतने महत्त्वपूर्ण शब्दों का उल्लेख किया है कि यदि औरत न होती, तो बहुत सारे महत्त्वपूर्ण शब्द भी न होते। 'मन से शिला अहिल्या' में भारत के छले जाने का चित्रण हुआ है। 'तेजाबी कल्चर' में औरत का सारा दर्द समाहित है। 'नग्न सत्य' कविता में पुरुषों की नजरों में स्त्री का बहुत ही संवेदनशील चित्रण किया गया है। इस कविता का एक अंश देखिए–

''रेप करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है
लड़कियों का क्या है वो तो मरने के लिए
ही बनी है
मन से मरे या शरीर से।''5 (पृ. 44)

कवयित्री सिर्फ अपने अधिकारों को लेकर ही चिंतित नहीं है। ह्रास होती मानवता और मानव मूल्यों की भी चिंता उसे है। समाज में धार्मिक और आर्थिक भेदभाव को लेकर उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। कवयित्री 'सर्वधर्म सम्भाव' की बात करती है। 'नेक नियत' कविता में इनके विचार देखिए–

''न मंदिर बनाने न मस्जिद गिराने की बात करते हैं
न रामो–रहीम में फर्क बताने की बात करते हैं
हम तो इंसानियत में यकीन रखते हैं दोस्तो
इसलिए तो सब धर्मों को मिलाने की बात करते हैं।''6 (पृ. 18)

प्रस्तुत संकलन में समाज की आर्थिक बदहाली को लेकर चिंता जताई गई है। 'बदलते हालात, बदलती चिंताएँ' कविता में तब और अब का फर्क बयां किया गया है। 'बेटा! चाँद रोटी जैसा गोल होता है' अब 'रोटी उसी जैसे गोल होती है' इससे रोटी का फर्क आसानी से समझ में आ जाता है। 'बोन्साई' कविता बहुत ही यथार्थ कविता है। माला सिंहजी ने बोन्साई पौधे बनाने की तुलना गरीबों से करती है। जापान की यह परंपरा तो हमारे यहाँ बहुत पहले से कायम है और हम पौधों की जगह गरीबों को रखते हैं–

''अरे यही सब तो
हमारे खानदान में
सात पुश्तों से होता आया है
विधि में कोई अंतर नहीं
बस जरा सा फर्क है
पौधों की जगह हम
अपनी रियासत के 'गरीबों' को रखते थे।''7 (पृ. 17)

'रुदन ईश्वर का' कविता धर्म की वास्तविक अवधारणा से हमें जोड़ना चाहती है। धार्मिक आडम्बरों की परंपरा हमें धर्म से दूर ले जाती है। कबीर की फटकार से कौन बचा है। सभी धर्म के ठेकेदारों को वे ललकारते रहे, लेकिन कौन सुनता है। कवयित्री की यह धार्मिक विचारधारा उसे आध्यात्मिकता के धरातल पर लाती है और उन्हें कबीर के विचारों के बहुत करीब लाकर खड़ा करती है। इस कविता से दिनकर जी की 'श्वानों को मिलता दूध भात' की याद ताजा हो जाती है। उदाहरण देखिए'–

''जी हाँ, हँसता है भगवान और
हँसते–हँसते रो देता है, जब
उसके घर यानी मंदिर में
पत्थर को दूध पिलाने के होड़ में
मानों दूध नाली में बहाया जाता है
मिठाइयों, फलों के ढेर चढ़ाया जाता है और वो
मंदिर के बाहर, अनाथ, निर्धन, भिखारी
कोढ़ी–अपाहिज के वेश में
बाहर भूखा ही रह जाता है।''8 (पृ. 37)

देश की आर्थिक समानता पर बहुत करारा व्यंग्य किया है। देश में मेहनत को बहुत महत्व दिया जाता है, परन्तु मेहनत करनेवाले का पेट नहीं भरता। यहाँ सबसे ज्यादा काम करेवाले की स्थिति ज्यादा ही बुरी है। माना कि वह कमेरा चालाक नहीं है, तो क्या समाज उसके साथ न्याय नहीं कर सकता है। क्या समाज का कोई दायित्व नहीं है?यदि समाज नियम विहीन है, तो आखिर हम क्यों उसे बार–बार सामाजिक दायरे में रहने की बात करते हैं। जब समाज अन्याय पर आवाज नहीं उठा सकता है, तो सामाजिक हवाला सिर्फ गरीबों का शोषण है। 'कमाय लंगोटिया, खाय लंबधोतिया' के सिद्धांत पर देश चल रहा है। कवयित्री समाज के पाप–पुण्य के मानक को नकारती है। यह सिर्फ लोगों के शोषण के लिए बनाया गया है। 'गीता सार' कविता का उदाहरण देखिए रीढ़विहीन समाज की सच्चाई अभिव्यक्त होती है–

''मुन्नी ये भी नहीं समझ पाती कि
रघुआ सारा दिन काम करके भी
भूखा रह जाता है और
सेठ धन्नीलाल सारा दिन गद्दी पर बैठा रहकर भी
दस रघुआ का भोजन अकेले
निगल जाता है।''9 (पृ. 86)

निष्कर्षत: 'अनुभवों की बयानबाजी' कविता संग्रह माला सिंहजी के निडर व्यक्तित्व का परिचायक है। समाज में जहाँ अन्याय है, शोषण है, असमानता है, उसकी आलोचना एक सजग नागरिक का कर्तव्य है, जिसका निर्वहन कवयित्री ने बाखूबी किया है। हम 'लोग क्या कहेंगे' के झांसे में सच कहने से डर जाते हैं, इसलिए समाज अपने उत्तरदायित्वों से भटक जाता है। कवयित्री अपने अनुभवों को सच्चाई से कहा है। 'लोग क्या कहेंगे' इसकी चिंता इन्होंने नहीं की है। 'अस्तित्व की तलाश' की कविता : 'अनुभवों की बयानबाजी' आलेख के माध्यम से कुछ अंशों को आप तक पहुँचाने का प्रयास किया गया है। सही आकलन तो संकलन को पढ़कर ही किया जा सकता है। निश्चित ही यह पुस्तक आपको पढ़ने के लिए आकर्षित करेगी।

समीक्षा

नई परिभाषाएँ गढ़ती कविताएँ

अरविन्द अवस्थी
बेलखरिया, मीरजापुर
मो0 9161686444

बैंक में शाखाप्रबंधक के पद से सेवानिवृत वरिष्ठ कवि एवं लघुकथाकार श्रीकेदारनाथ 'सविता'जी का कविता संग्रह 'हथौड़ियों की चोट' हिन्दीश्री पब्लिकेशन से प्रकाशित हुआ है। संग्रह में अधिकांश क्षणिकाएँ एवं लघुकविताएँ हैं, जो आठ उपक्रमों में विभाजित हैं। इस संग्रह की भूमिका वरिष्ठ साहित्यकार श्रीभोलानाथ कुशवाहा ने लिखी है। कवि ने 'आत्म–निवेदन' में स्पष्ट लिखा है कि वे किसी कॉलेज में हिन्दी शिक्षक बनना चाहते थे अर्थात् उनका लगाव हिन्दी के प्रति बहुत स्वाभाविक, गहरा और बचपन से था। छात्र जीवन में धर्मयुग आदि पत्रिकाएँ पढ़ने की प्रवृत्ति ने निश्चय ही उनकी सर्जन क्षमता को प्रेरित किया होगा।

सविताजी का प्रारंभिक जीवन सामान्य स्तर का था। समाज के हर पहलू को समझने का उनको मौका मिला और कल्पना नहीं यथार्थ से उनका सीधा मुकाबला होता रहा। अपने जीवन की अविस्मरणीय जिन दो घटनाओं का उन्होंने जिक्र किया है, वे सामान्य घटनाएँ नहीं थीं। हाँ, इन घटनाओं ने कवि को संघर्ष के लिए पूरी तरह तैयार कर दिया। विषम परिस्थितियों में भी कमी विचलित न होने का गूढ़ सविताजी से सीखा जा सकता है। आज का आदमी अपनी रोजमर्रा की समस्याओं से इस कदर उलझा रहता है कि वह पलभर के लिए तनावमुक्त होना चाहता है। उसके पास गंभीर और बड़ा साहित्य पढ़ने का न तो समय है और न जज्बा। उसे मनोरंजन की तलाश रहती है। लंबी कविता की जगह कम शब्दों में कही गयी बातों में अपना मतलब प्राप्त करना चाहता है। इस परिप्रेक्ष्य में सविताजी की क्षणिकाएँ और छोटी कविताएँ पाठकों के लिए पाथेय काम करती हैं। चलते–फिरते कविताओं को पढ़कर वह मनोरंजन भी कर लेता है और पढ़ने की भूख भी मिटा लेता है। इस दृष्टि से इस संग्रह की कविताएँ बहुत कीमती और उपयोगी है। 'हथौड़ियों की चोट' प्रतीकात्मक शीर्षक है। हर उस घटना या मनसूबे पर ये कविताएँ चोट करती हैं, जो समाज और मानवता के विरुद्ध है। क्या सम्राट प्रेमचंद ने कवि के लिए लिखा है, ''जिसे संसार दुख कहता है, वह कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रस और बल, विद्या और बुद्धि ये विभूतियाँ संसार को चाहे कितना ही मोहित कर लें, कवि के लिए यहाँ जरा भी आकर्षण नहीं है। उसके मोह और आकर्षण की वस्तु तो बुझी हुई आशाएँ और मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए हृदय के आँसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों से उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न होगा।'' यदि सविता जी के जीवन संघर्ष को देखा जाए, तो यह उनके कवि होने का स्वाभाविक प्रमाण है।

उनके जीवन की सादगी उनकी कविताओं में भी है। उन्होंने रचने के पहले बहुत कुछ देखा है, बहुत कुछ भोगा है। यह देखना और अनुभव करना ही सांसारिक होना है, समाज से जुड़ना है। इस 'देखने' से ही कवि की अपनी दृष्टि बनती है, जो पाठक के कविताओं में दिखाई पड़ती है।

आज की भागती दुनिया में आदमी की आँखें भौतिकता की चकाचौंध में इतनी उलझी हुई हैं कि सामान्यतया उसका आकर्षण कविता की ओर नहीं है। कवि और लेखक है, पुस्तकें भी हैं; किन्तु पाठक कितने हैं, यह वास्तविकता उन्हें भी पता है। पढ़ने का चलन कम हुआ है। पढ़नेवालों के कोर्स की किताबों से फुर्सत नहीं और कामकाजी लोगों को अपने काम से। इन्हीं के बीच कुछ लोग हैं, जो साहित्य को आगे ले जा रहे हैं। इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि आज बहुत लिखा जा रहा है, अच्छा भी और प्रयोगधर्मी लेखन भी प्रचुर मात्रा में हो रहा है। हमें यह समझना होगा कि कविता व्यापक जीवनबोध के लिए जरूरी है। कविता हमें जीवन की सही राह दिखाती है। निराशा में आशा और उम्मीद की रोशनी है। कविता समस्त मानवता से ही नहीं, अपितु चराचर से प्रेम करना सिखाती है। इस संग्रह की कविताएँ ऐसा ही संदेश छोड़ती है।

आज का समय पूँजी के प्रभाव का है। मूल्यहीनता या मानवीय मूल्यों का क्षरण, श्रम का अगाध शोषण, बाजार और लाभ–हानि का मुद्दा वर्तमान की चिंता के विषय हैं। सविताजी की रचनाओं को पढ़ते हुए ऐसा स्पष्ट होता है कि उनके अंदर की सामाजिक अनुभूतियाँ अभिव्यक्त हो उठी हैं। इन कविताओं में आम आदमी के सरोकारों पर गहरा लेखन है। दिन–रात मेहनत करके परिवार को दो जून की रोटी मुहैया करानेवाले मजदूर या किसान जानता है कि यह रोटी कितनी महँगी है। उसकी ईमानदारी और उसके श्रम का पलड़ा पता नहीं क्यों हल्का ही रह जाता है। 'रोटी' कविता में इस सच्चाई को देखा जा सकता है–''महँगाई ने/ रोटी का आकार/ जितना छोटा कर दिया है/ आदमी ने उसे/ उतने ही बड़े तराजू में/ ईमान के साथ/ तौल दिया जाता है।''

सविताजी शब्दों के तीर इस प्रकार छोड़ते हैं कि निशाना बिल्कुल अचूक होता है। एकदम ठीक जगह पर लगता है। 'घोटाले' कविता में नेताओं पर किये व्यंग्य को देखा जा सकता है–''भगत सिंह को/ आजादी के लिए/ बर्फ की सिल्लियों पर/ सोना पड़ा/ हमारे नेतागण/ नोटों की गड्डियों पर/ सोने के लिए/ करते हैं/ नित नये–नये घोटाले।''

किसान की पीड़ा का बखूबी चित्रण करने के बाद किसान के बहाने भ्रष्ट नेताओं पर टिप्पणी करती कविता 'नया किसान' सटीक व्यंग्य करती है–''चलाकर जनता पर/ भाषणों का हल/ वोटों की काटकर फसल/ असेम्बली–बाजार में/ बाँधते नोटों के बंडल/ हुआ मेरा विहान/ मैं हूँ देश का नया किसान।''

आजादी के बाद राजनीति का स्तर दिन–प्रतिदिन नीचे गिरता जा रहा है। 'जनता की सेवा' या 'जनता का प्रतिनिधि' जैसे शब्द अब महत्वहीन हो गये हैं। स्वार्थ हावी होता जा रहा है। आज इस पार्टी में तो कल उस पार्टी में। कुछ तो ऐसे हैं, जिनकी किसी विचारधारा में कोई प्रतिबद्धता नहीं रह गई है। जब जिस पार्टी से टिकट मिलने की संभावना बनती है, अगले दिन अपने कुछ समर्थकों के साथ उस पार्टी में शामिल हो जाते हैं। दलबदल की इस नीति ने भी राजनीति की शुचिता को अपवित्र किया है। 'मंत्री–पद' कविता में कुछ ऐसा ही यथार्थ झलकता है–''गर्व से कहो/ हम भारतीय हैं/ हमारे यहाँ/ मंत्रीपद अगणितीय है।''

आज की पीढ़ी ने स्वतंत्रता का मतलब ही अलग निकाल लिया है। किसी नियम–कानून की सरेआम धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं। अनुशासन जैसा शब्द पुराना–सा लगता है। अतीत की विरासत हो चुका है। अब कुछ लोग स्वतंत्रता को स्वच्छंदता मान बैठे हैं। वे जो करें, वही सही है। 'स्वतंत्रता' कविता में लोगों की ऐसी ही उच्छृंखलता सामने आती है–''हम स्वतंत्र देश के/ स्वतंत्र नागरिक हैं/ हर गलत–सही कार्य/ करने के लिए/ स्वतंत्र हैं।''

इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि तकनीक की दिशा में देश उत्थान कर रहा है। सबके हाथ में मोबाईल देखा जा सकता है। टूजी से फोरजी और अब फाइवजी की ओर बढ़ गये हैं। सड़कों का जाल बिछता जा रहा है। कस्बों में भी बिग बाजार और मॉल संस्कृति के बढ़ते चरण शहर और गाँव का फर्क मिटा रहे हैं, किन्तु जिस मजदूर को काम के लिए दर–दर भटकना पड़ता है, उसका क्या?'इक्कीसवीं सदी' कविता में ऐसे ही श्रमिकों की पीड़ा को स्वर दिया गया है–''हरिया को तीन दिन से/ मजदूरी नहीं मिली/ खाना भी नहीं मिला/ दीवार पर चिपके पोस्टर पर/ लिखा था–इक्कीसवीं सदी की ओर/ बढ़ रहे हैं हम।''

वरिष्ठ और लोकप्रिय साहित्यकार भरत प्रसाद लिखते हैं–'देश के मन, चित्त, आकांक्षा, सपने और स्वभाव को रचनेवाला साहित्य ही युगधर्मी

साहित्य होता है।इस बात में कुछ भी नयापन नहीं कि साहित्य हालात–ए–वक्त की धड़कन है, जिसमें तत्कालीन यथार्थ को धड़कते हुए सुना जा सकता है। कई बार इतिहास की मोटी–मोटी पुस्तकें समय की आंतरिक हकीकतें बताने से चूक जाती है, तो यह दायित्व साहित्य पूरा करता है।''

सविता जी की कविताएँ इस कसौटी पर खरी उतरती है। कोई क्षेत्र छूटता नहीं, हर पहलू पर उनकी पैनी दृष्टि पड़ी है और उसे कविता का विषय बनाया है। पारिवारिक, सामाजिक, व्यावहारिक और आम आदमी से जुड़े तमाम सरोकारों पर अपनी लेखनी चलाई है। कालचेतना के पारखी कवि केदारनाथ 'सविता' पत्थर में इंसान जगानेवाले इन्सान को स्वयं पत्थर होता हुआ देखकर बिना कहे नहीं रुक पाते–''शिल्पकार/ पत्थर में/ इंसान जगाने के लिए/ हथौड़ियों की चोट करता रहा/ यहाँ इंसान/ इंसान की चोट से/ पत्थर होता रहा।''

कवि की भाषा सहज–सरल होते हुए भी कहीं नुकीली तो कहीं चुटीली बन गई है। तंज, प्रेम और हास्य से संग्रह की कविताएँ नये आस्वाद प्रदान करती हैं।कवि को हार्दिक बधाई।

प्रकाशक–हिन्दी पब्लिकेशन, सूर्यवन, उ.प्र.

कविता

सुभाषचन्द्र झा
बिहार प्रशासनिक सेवा, सरकार के विशेष सचिव
भागलपुर प्रमंडल, भागलपुर
मो0–9431208428

मन सोचता है कि उदास न हो

ढलती संध्या की उदास वेला में
थके हारे परिन्दे की तरह
वक्त की जीर्ण टहनी पर बैठा
गमगीन सोचता हूँ
झूठे चेहरे के साथ
...सच्चे हैं हम
खुद की फरेबी दुनिया में
जबकि पाने को कुछ नहीं
तो जाने को कुछ नहीं
किसी केवाड़ पर
हाथ के निशान की तरह
किसी पुराने तालें या
संदूक की जुदा में
अपने स्थायी पते की अक्षरों के नीचे
उदास सूने लादे जर्जर अधूरे ख्वाब
तनहा–तनहा सा भीड़ में
गम बेहिसाब
कितना कठिन है एकांत में होना
इतना ही कठिन है एकांकी सफर
शून्य से अनंत तक
जीवन बंजारों का डेरा
आज यहाँ, कल वहाँ कुछ है
अंधियारा आकाश असीमित चतुर्दिक
न अब दिन होता है, न रात होती है
सभी कुछ रुका सा है
रीतते मधुमास में
ठूंठ होते वृक्ष तले
यात्रा एक ही निकट
जल पी रहे जिसमें
मैं और मेरा ईश्वर
गर होश में होता
ये शीशे के मकान न बनवाता
जो जिल गया मुझे तोभी मेरा तो नहीं
बस इसी बात का अहसास कराती है मुझे
तलाश जिंदगी की
दिल में फकीर जिंदा रखकर
किसी गुमराह रास्ते पर
अंजाने एकाकी सफर में
बस मैं, मैं और मैं
छूट चुका है चिराग चौखट पर
खुद को खो दिया, अपने को पाते–पाते
खाली हाथ रहा रिश्तों को निभाते–निभाते
मैं मरुभूमि उगा कोई वृक्ष अकेला
जीवन सांझ की तनहा वेला
सुने उदास रास्ते पर
न कांटे न फूल
कुछ भी अपने नहीं है
अनगिनत उम्मीदों अवसादों के क्षण
अभी कुछ समय पहले
इस जीवन के झुरमुट में
सोहर थी, कविता थी
कुहकन, चिहुकन, पुलकन थी
गीत–नृत्य, शहनाई थी
राग–रंजित भोर साँझ सपनीली
सोम पासती श्वेत चांदनी
महकी हुई रात झबरीली
पर अब अवसान के लम्हे में
बँधी मुट्ठियाँ और हाथ खाली
कोई बड़ा सत्य खोया है
दूर क्षितिज के किसी छोर पर
अजुरीभर गर्म आंसू
पलकों के प्यासे किनारों पर
तिनका–तिनका बिखरन टूटन–कंपन
मटक रहा मन पर यदि
अंधियारों से भरी डगर पर
हर तरफ ध्रुवों की दूरी
बेकसी में बंधी मजबूरी
कैसे–कैसे पास अब लाएँ
परवशता के महासत्य को
कहाँ तक झुठलाएँ
वही काटने को मिलता है
अबतक जो हमने बोया है
मृगमरीचिका में भटकता हृदय
सूखता भावपक्ष का निर्झर
सासें तन पे जैसे भारी
रिश्ते–नाते कोई नहीं अब
एक अंजाना सफ़र
मन बहुत सोचता है कि उदास न हो
पर उदासी के बना रहा कैसे जाए
अपने ही रचे एकांत का देश
सहा कैसे जाए
कुछ कहूँ भी तो सुनने को कोई पास न हो
आगे बढ़ने की बणिक होड़ में
क्या–क्या खो दिया हमने
अपने पहचान की सारी बातें छोड़ी
अपनों की पुरानी यादें छोड़ी
चिट्ठी लिखने का आनंद खो दिया
सुख की चाह में सुख को ही छोड़ दिया।
सूखे पत्तों की तरह
हालात की आंधी में बिखर कर
जीवन की आपधापी में पड़ा अशांत मन
फिर भी सोचता है कि उदास न हो
घायल तो यहाँ हर परिंदा है
मगर जो फिर उड़ सका
वही जिन्दा है
न कोई अधिकारी है, न कोई अधिकार योग्य वस्तु
सब कुछ तो नश्वर है यहाँ
शीशे में फैली धूल की तरह
जाने किस प्रतिक्रिया की उम्मीद में
मन सोचता है कि यदि उदास न हो
आँखों की रोशनी तक है खेल सारा
कौन कब किसका और
कितना अपना है..
यह सब वक़्त बताता है
आपके होने ना होने से
किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता है
चार दिन गायब होने से
लोग नाम तक भूल जाते हैं
जितनी जरूरत, उतनी मात्र अहमियत
आदमी सारी जिंदगी की
धोखे में रहता है कि
वह लोगों के लिए अहम है, मगर
लोग गिरे मकान की ईंट तक ले जाते हैं
परिछाईं भी प्रकाश रहने तक साथ होती है
फिर भी मन बहुत सोचता है कि
उदास न हो।

समीक्षा

धूप में अलाव सी सुलग रही रेत पर

राधेलाल बिजधावने
भरतनगर (शाहपुरा)
अरेरा कॉलोनी, भोपाल
मो. 9826559989

परंपरागत भारतीय चिंतन के परिप्रेक्ष्य में, सृजनात्मक चिंतन के रचनात्मक विशाल फलक की ओर निरंतर बढ़ते रहना आसान नहीं, खासकर ऐसे समय में जबकि मनुष्य में संवेदनहीनता की स्थिति अपने जड़ें गहरी जमा चुकी हों तथा क्षुद्र और थोथे आदर्शों की वजह से मनुष्य के जीवन में मुखौटी औपचारिकता ने जगह बना ली हो। ऐसे कठिन समय में राजेन्द्र नागदेव अपनी कविताओं में ओजस्वी सृजनात्मक विचारों से आधुनिकता की नवीन परंपरा को मानवीय जीवन में स्थापित करना चाहते हैं। इसलिए इनकी कविताएँ नवोत्तर संवादी हैं तथा परंपरा की फिसलन भरी जमीन पर पैर रखने से स्वयं को हमेशा बचाए रखती हैं। राजेन्द्र नागदेव आधुनिक समय में थोथी और जड़ परंपराओं पर गंभीरता से विमर्श करते हैं। वे सामाजिक चिंताओं तथा निरंतर गिरते मानवीय मूल्यों को पुनर्स्थापित करने की हर जन–गण में उत्कंठा स्थापित करना चाहते हैं।

'धूप में अलाव सी सुलग रही रेत पर' संग्रह की राजेन्द्र नागदेव की कविताएँ–मनुष्य जीवन के कठिन समय के बीच गुजरती हैं। वे तकनीकी दृष्टि से सम्पन्न, भौतिक सुविधाओं को भोगते मनुष्य की संवेदनशीलता में नया बदलाव की उत्प्रेरणा पैदा करती है और उसमें नई स्फूर्ति एवं ऊष्मा भी पैदा करती है।

''इन दिनों मेरी खिड़की से बाहर
मिट्‌टुओं का हरापन हवा से उतर आंगन में नहीं आता
मेरे बचपन ने बहुत देखा था हरापन
वह पिंजड़ों से भी बाहर कहीं निकल गया है,
अमरूद के दो वृक्ष आंगन में
उस हरेपन के इंतजार में खड़े हैं कबसे
उदास–उदास थके हारे
अमरुद की गंध अब मिट्‌टुओं तक नहीं पहुँचती
इलाहाबादी हों कि मलीहाबादी
सब कुछ बदल गया है
बस थोड़ा–सा
ताड़पत्रों पर लिखी घिसती जा रही
पांडुलिपि की तरह शेष है
सदी की आपाधापी के झंझावात नियम से आते हैं
और बहुत कुछ मिटाकर चले जाते हैं।
मैं भयभीत हूँ
कि 'आज' अपने ताप से कहीं
'कल' को पूरा गला न डाले।'' (स्मृतियाँ मरती नहीं, पृ.115–116)

'धूप में अलाव सी सुलग रही रेत पर' संग्रह की कविताएँ बढ़ते शोषण, अतिवाद, भ्रष्टाचार, आतंकवाद और हत्याओं की धूप से तकलीफदेह दुर्दिनों के अलाव की तरह सुलग रहीहै कठिन समय की रेत पर, जहाँ हर आदमी अंदर ही अंदर चुपचाप जल–झुलस रहा है, जिसपर ध्यान देनेवाला कहीं कोई नहीं।

''धूप में अलाव सी सुलग रही रेत पर
झाग भरी हिलोरें धो रही हैं पाँव
उँगलियों से चढ़ रहा है धीरे–धीरे
देह में समुद्र।'' (मेरे अंदर समुद्र, पृ.28)

इस संग्रह की कविताएँ मानवीय जीवन की अनंत संभावनाओं और संवेदनाओं को समेटने की कोशिश करती हैं, दुःखों, तकलीफों, पीड़ाओं और प्रताड़नाओं एवं आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक शोषण के निरंतर बढ़ते धुएँ, धुंध और कोहरे को हटाया जा सके और मनुष्य को उसके जीवन की नई जमीन प्राप्त हो सके। वह तनावों, तकलीफों की बढ़ती लपटों में आत्म शान्ति प्राप्त कर सके।

''धूप थी
ग्रीष्म की लपटों से जल रही थी हवा
ओट ले के आगेवाले बरामदे में
रोज की तरह छाँव और हम थे
'हाँ भैया! कां जा रिये हो?'
'बस, मगनीराम मुरलीधर की दुकान तक'
यार! आते आते दो समोसे और दो जलेबियाँ
लेते आना कहीं से
अब बुढ़ापे में
ऐसा कुछ खाने को नहीं मिलता।'' (बरामदा, पृ.81)

राजेन्द्र नागदेव की कविताएँ अपने समय और समाज को समझने की अंतर्दृष्टि देती है। असंतुष्टि एवं व्याकुलता के सभी परदों को खोलकर वास्तविक स्वरूप को उजागर करती हैं। इसके साथ ही जीवन की निराशाओं का प्रतिरोध करती हुई मनुष्य को नई चेतना दृष्टि और शक्ति देती है तथा सुनियोजित षड़यंत्रों के खिलाफ जुझारू मोर्चा संभाल कर लंबी सार्थक लड़ाई की उत्साहवर्धक ताकत को समृद्ध करती है।

''सड़क कराहती है
देह पर दहकते हैं टायरों के निशान
क्या कोई ट्रक गुजरा था आधी रात
कुछ शब्द पड़े हैं कागज पर अस्तव्यस्त
क्या कोई कविता निकली थी यहाँ से
सीपियाँ, शंख, घिसे हुए पत्थर
चट्टान के तन पर खुरचे जाने के घाव
क्या कोई नदी बही थी कभी। (जिग्यासा, पृ.36)

'धूप में अलाव सी सुलग रही रेत पर' की कविताएँ मनुष्य के अनाधिकृत अधिकारों, निकृष्ट संस्कारों और बुरी आदतों को बदलने की कोशिश करती हैं। वे जीवन को नए समय और नई दृष्टि से देखने की उम्मीदों की नई फसल लहलहाने की आशा और विश्वास को बलशाली बनाती हैं, जीवन को नई रोशनी देती हैं। संग्रह की कविताएँ बीमार समय का निष्ठा और तत्परता से इलाज करती हैं।

समीक्षा

प्रेम का रंग नीला

डॉ. नीलोत्पल रमेश
पुराना शिवमंदिर, बुध बाजार,
गिद्दी ए, हजारीबाग
मो. 9931117537

'प्रेम का रंग नीला' प्रवीण परिमल का तीसरा काव्य संकलन है। इसके पूर्व इनके दो काव्य संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। 'प्रेम का रंग नीला' पुस्तक में प्रवीण परिमल की 17 कविताएँ और 27 गीत–नवगीत संकलित हैं। ये रचनाएँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

'प्रेम का रंग नीला' में कवि ने प्रेम को ही कई कोणों से जानने–समझने का प्रयास किया है। प्रेम का रंग तो सभी रंगों में समाहित होता है। जहाँ तक कवि प्रवीण परिमल की बात है, तो कवि को नीला रंग ही ज्यादा प्रभावित करता है। वैसे सूरदास और जयशंकर प्रसाद ने भी प्रेम के रंग को नीला ही माना है। 'प्रेम' एक ऐसा शब्द है, जिसमें ब्रह्मांड के कण–कण समाहित हैं। इससे अलग होकर मनुष्य का जीना मुश्किल है। वैसी स्थिति में कवि ने अपनी प्रेमाभिव्यक्ति के माध्यम से अपनी प्रिया, अपनी सहचरी, अपनी प्रेमिका, जो भी हो, को संबोधित किया है। यहाँ प्रेम शुद्ध और सात्विक है। इसमें कहीं भी वासना का बू तक नहीं आती है। यहाँ पर पवित्र हृदय का पवित्र हृदय मिलन के लिए मनुहार को साफ–साफ महसूस किया जा सकता है।

डॉ. अशोक प्रियदर्शी ने प्रवीण परिमल की कविताओं के बारे में ठीक ही लिखा है–''इस संकलन का मूल रंग प्रेम है, चाहे वह कविताओं की शक्ल में हो या गीतों की और प्रेम! प्रेम को शब्दों में बाँधना कभी सरल नहीं रहा है, व्यक्तिगत जीवन में भी।'' डॉ. राधानंद सिंह ने भी प्रवीण परिमल की रचनाओं को प्रेम से परिपूर्ण माना है। उन्होंने लिखा है–''इसमें अधिकांश रचनाएँ कवि के प्रेमपूर्ण घटनाओं पर आधृत हैं। इसकी सार्थकता इसी में है कि वह प्रेम वातायन से सब कुछ देखता है–अनुभव करता है और उसे काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। कवि ने प्रेम को जीया है, उसे भोगा है तथा संयोग और वियोग की छूप–छाँही में गुदगुदाने का अवसर भी प्राप्त किया है। कवि ने अपनी भावनाओं को कभी अभिधा में, कभी लक्षणा में और कभी व्यंजना में अभिव्यक्त किया है।''

'वह लड़की' कविता के माध्यम से कवि ने अपने प्रेम करने के ढंग को अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। उस लड़की के सपनों से, कोमलता से, गंभीरता से, भावुकता से, स्पष्टता से, कौमार्य से और असाधारणता से कवि को प्यार है। इसमें गंगाजल की निर्मलता और गीता की पवित्रता को साफ–साफ देखा जा सकता है। कवि ने लिखा है–

''यानी मुझे उस लड़की से प्यार है / जिसकी आँखें सपनीली हैं / जिसके होंठ रसीले हैं, / जिसका मन भावुक है /जिसकी देह कुँवारी है / और जिसका व्यक्तित्व असाधारण है।''

'मेहा की अठारहवीं वर्षगाँठ पर' कविता के माध्यम से कवि ने अट्ठारह वर्ष की उम्र में लड़कियों के अंदर बनते–बिगड़ते भावों को अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। मेहा के माध्यम से कवि ने उन तमाम लड़कियों का जिक्र किया है, जो अट्ठारह वर्ष पूर्ण कर चुकी हैं। अक्सर इस उम्र की लड़कियाँ हसीन सपने देखती हैं और फिर उन्हीं सपनों में जीने की कोशिश करती हैं, जिसमें सफलता–असफलता दोनों मिलते हैं। लड़कियों को कवि ने सलाह भी दी है और उनके मन को परखने की कोशिश भी की है। इसे कवि ने इस प्रकार लिखा है–

''अब तुम्हारा भी मन करेगा /किसी को अपना बनने का /अब तुम्हारा भी मन करेगा / किसी को अपना बनाने का/ अब तुम्हारा भी मन करेगा / दुधिया चाँदनी में / निर्वसन नहाने का।''

'अनु के लिए एक कविता' के माध्यम से कवि ने प्रेमी और प्रेमिका के बीच व्याप्त झिझक को मिटाने की कोशिश की है। वह चाहता है कि अनु उसकी हो, ताकि वह उसके अंग–प्रत्यंग और उसकी गोपनीयता से परिचित हो सके। इसमें कवि ने प्रेमी के द्वारा किया गया एकालाप का ही वर्णन किया है। प्रेमी के मन में जो भी बातें आती हैं, उसे साफ–साफ कह देता है अपनी प्रेमिका से। कवि ने प्रेम को नीला कहा है; क्योंकि चिड़िया का नीला अंडा प्रेम का ही प्रतिफलन है। इसे इस प्रकार कवि ने लिखा है–

''आखिर प्रेम कोई कपूर की टिकिया तो है नहीं, अनु
जो धीरे–धीरे वायुमंडल में विलीन हो जाएगा
विलुप्त हो जाएगा।
चिड़िया का एक नीला अंडा ही तो है यह / जो आज न सही / कल तो फूटेगा ही और जब फूटेगा / तो हकीकत का / एक अदद उमड़ता सैलाब बाहर होगा।''

'यूँ तो' कविता के माध्यम से कवि ने प्रेम का प्रतिफलन अपनी प्रिया को माना है। प्रेमी का हृदय कब से प्यासा है। उसके प्यासे हृदय की प्यास प्रिया को पा जाने से बूझ पाएगी। उसके सपनों पर विराम तभी लगेगा, जब उसकी प्रिया उसकी हो जाएगी। कवि ने लिखा है–

''तुम्हें पाकर ही तो / मेरा हर सपना पूरा होगा / मेरा हर गीत सुनाने लायक होगा / और मेरा जीवन भी / तभी सार्थक होगा।''

'तुम्हारा अस्तित्व' कविता के माध्यम से कविने अपनी प्रिया के अस्तित्व में ही अपना अस्तित्व टिका पाया है। अपनी प्रिया की हर चीज उसे पसंद है। यानी प्रिया की इच्छा–अनिच्छा को अपना मान लिया है। कवि ने लिखा है–

''परन्तु आज / पहली बार / जब मैंने तुम्हारा अस्तित्व जानना चाहा / तो लगा कि तुम्हारे ही अस्तित्व पर / मेरा यह अस्तित्व टिका है।''

'अंजुरी भर अंगारा' गीत के माध्यम से कवि ने प्रिया के प्रति नाराजगी जाहिर की है। इस नाराजगी को भी कवि हँसते–हँसते आत्मसात करने को उद्धत है। वह कहता है कि तुमने मुझे अंगारा ही दिया है। यानी जीवन पथ पर कठिनाइयाँ ही तुमने मुझे दी है। मैं तो प्रेम का आकांक्षी था, पर तुमने मुझे प्रेम के बदले उपेक्षा ही दी है। यही कारण है कि कवि के गीतों में दर्द उभरकर आए हैं। इसे यूँ देखा जाए–

''यदि तुमने कुछ दिया मुझे तो / अँजुरी भर अंगारा / पीर हुई पर्वत–सी दिल की / उर में उठे फफोले / मिले नेह के बदले तुमसे / सिर्फ दहकते शोले / अमृत–सा जीवन जल मेरा / किया तुम ही ने खारा।''

'कैसे प्रणय के गीत गाऊँ' गीत के माध्यम से कवि ने अपने पीछे की स्मृतियों के सहारे वर्तमान की अभिव्यक्ति किया है। कवि प्रणय का गीत तो गाना चाहता है, पर प्रणय के गीत के लिए माकूल समय नहीं है, क्योंकि वह विरह की अग्नि में जल रहा है। विरह और प्रणय दोनों अलग–अलग स्थितियाँ हैं। इन स्थितियों में कवि सामंजस्य बैठाना चाहता है, पर वह उनकी क्षणभंगुरता से भी पूरी तरह वाकिफ है। उसे पता है, बुलबुला और सपने आकार–साकार नहीं होते हैं। वह लिखता है–

''दग्ध मन की वेदना ही हूँ नहीं जब भूल पाता
तुम कहो, कैसे विरह में मैं प्रणय के गीत गाऊँ

जानता हूँ, बुलबुला कुछ देर को आकार पाता
जानता हूँ, स्वप्न कोई हो नहीं साकार पाता
आँधियों में जबकि कोई वृक्ष तक टिकता नहीं है
मैं भला फिर अलगनी पर किस तरह सपने सजाऊँ!''

'मेरे मन की रानी' गीत के माध्यम से कवि ने अपनी अभिव्यक्ति का पूरा श्रेय अपनी प्रिया को दिया है। उसका कहना है कि तुम मेरे मन की रानी हो। तुम्हारे स्पर्शमात्र से मेरे गीत अमर हो जाते हैं। तुम हो तो मेरे जीवन में उल्लास का वातावरण व्याप्त है। कवि ने इसे इस प्रकार लिखा है–

''मेरे मन की रानी हो तुम / तुम में ही इतिहास बसा है / जीवन का उल्लास बसा है / जनजीवन का हास बसा है / कवि की मधुमय वाणी हो तुम।''

'झिझक रहा हूँ' गीत के माध्यम से कवि ने अपनी प्रिया को बात बताने में अपनी झिझक का उल्लेख किया है। वे बातें जो कवि के हृदय में वर्षों से बंद हैं, उन्हें वह बताने में संकोच का अनुभव कर रहा है। इसी बहाने कवि ने प्रिया के सौंदर्य का एक बार याद कर लिया है। वह यह भी याद करता है कि जब तुम रूठ जाती थी, तो तुझे मनाने में बहुत मजा आता था। कवि ने लिखा है–

''रंग सुनहला, अंग रूपहला,
सुरखाबी तेरी पाँखें,
जादू–सा कुछ कर जाती थीं / मुझ पर वो तेरी आँखें / छोटी–छोटी बातों पर जब / रूठ कभी तू जाती थी / बहुत मजा आता था, प्रियतम! / उस पल तुझे मनाने में।''

'प्रेम का रंग नीला' संग्रह की कविताएँ हों या गीत–नवगीत हों, सबमें कवि ने प्रेम को ही अभिव्यक्त किया है। इसे मैं यूँ भी कह सकता हूँ कि प्रेम में डूबे एक कवि की तड़प, बेचैनी और भावनाओं का संग्रह है–'प्रेम का रंग नीला' इसमें शामिल रचनाएँ प्रेम की बखूबी जानने–समझने का मौका प्रदान करती है पाठकों को। प्रवीण परिमल ने इस संग्रह में अपने हृदय के उद्‌गारों को उड़ेल कर रख दिया है। अब पाठकों को तय करना है कि वे कितना सफल हुए हैं।

प्रकाशक : रुद्रादित्य प्रकाशन, प्रयागराज–11

मैं कविता हूँ

समीर उपाध्याय,
मनहर पार्क 96/ए चोटीला,
सुरेन्द्रनगर, गुजरात
मो.–9265717398

मैं कविता हूँ
मैं भाषा शिक्षण का अपरिहार्य अंग हूँ
मैं पद्य साहित्य की एक अनमोल विधा हूँ
मैं कवियों के अंतरतम से निकाला अस्खलित नाद हूँ।
मैं पूरे विश्व के धरातल पर छाया हुआ साहित्य का अद्‌भुत भंडार हूँ

मैं कविता हूँ
मैं कवियों की भावनाओं का रसात्मक उद्‌घाटन हूँ
मैं भावों और उर्मियों की कल–कल बहती सरिता हूँ
मैं भावशून्य व्यक्ति को पूर्ण भावसभर बनाती हूँ
मैं हृदयमंदिर में अखंड दीप–ज्योत जलाती हूँ

मैं कविता हूँ
मैं प्रेमियों के संयोगानंद की सूर–सरिता बहाती हूँ
मैं विरह की असह्य वेदना को वाणी प्रदान करती हूँ
मैं इतिहास को साहित्य के पन्ने पर अमर बनाती हूँ
मैं भूले हुए पात्रों को लोगों के दिल में बसाती हूँ

मैं कविता हूँ
मैं राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और पूर्वग्रह से मुक्त करती हूँ
मैं प्रेम, दया, ममता, सत्य और निष्ठा के पाठ पढ़ाती हूँ
मैं नकारात्मक आवेगों को पल भर में दूर हटाती हूँ
मैं सकारात्मक ऊर्जा से जीवन को खूब सजाती हूँ

मैं कविता हूँ
मैं कठोर से कठोर हृदय को पलभर में पिघलाती हूँ
मैं हैवान का भी हृदय परिवर्तन कर इंसान बनाती हूँ
मैं रिश्तों की कड़वाहट दूर कर मिठास भरती हूँ
मैं टूटे हुए तारों को जोड़कर मजबूत गाँठ लगाती हूँ

मैं कविता हूँ
मैं प्रकृति के अद्‌भुत सौंदर्य का रसास्वादन कराती हूँ
मैं नीरस जीवन को विभिन्न रसों से तरबतर बनाती हूँ

मैं निरंतर संघर्षरत रहने की एक प्रेरणा जगाती हूँ
मैं मौत से भी सीना तानकर सदा लड़ना सिखाती हूँ

मैं कविता हूँ
मैं हास्य और व्यंग्य के माध्यम से कटु प्रहार करती हूँ
मैं प्रतीकों के माध्यम से ढोल की पोल खोलती हूँ
मैं दुखियों और पीड़ितों की वेदना व्यक्त करती हूँ
देश और समाज का वास्तविक चित्र दर्शाती हूँ

मैं कविता हूँ
मैं एकाकीपन से थके व्यक्ति की हमराही बनती हूँ
मैं जीवन से ऊबे व्यक्ति में जिजीविषा जगाती हूँ
मैं जीवन को नये जोश, उत्साह और उमंग से भरती हूँ
मैं जीवन जीने की अनुपम अद्‌भुत कला सिखाती हूँ

मैं कविता हूँ
मैं वीरों और शहीदों की अमर कहानियाँ सुनाती हूँ
मैं आबाल–वृद्ध सभी में देशप्रेम का जुनून जगाती हूँ
मैं देश के लिए मर मिटने का हौसला बुलंद करती हूँ
मैं जवानों में फौज में भर्ती होने का साहस जुटाती हूँ

मैं कविता हूँ
मैं जात–पात, धर्म और सम्प्रदाय के भेद मिटाती हूँ
मैं इंसानियत और आदमियत का पैगाम सुनाती हूँ
मैं मानव को सच्चे अर्थ में मानव बनना सिखाती हूँ
मैं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना जगाती हूँ
मैं कविता हूँ
जहाँ नहीं पहुँचे पाता रवि, वहाँ भी पहुँच जाती हूँ।

समीक्षा

गीतों की जन्मकुंडली : टूटेंगे दर्प शिलाओं के

डॉ. रंजना गुप्ता
निराला नगर, लखनऊ, उ.प्र.
मो.–9936382664

त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका 'अग्रिमान' के प्रधान संपादक और वरिष्ठ गीत–नवगीतकार डॉ. मनोहर अभय के हाल ही में प्रकाशित गीत संकलन (टूटेंगे दर्प शिलाओं के) से गुजरते हुए ऐसा लगा मानो कोई गीतों की जन्मकुंडली बाँच रहा हो। साफ–सुथरे लोक–संवेदना से जुड़े व्यवस्था के तंज पर बेझिझक बुनते, बतियाते और आम आदमी की तकलीफों, उसकी घर–गृहस्थी की उलझनों से सरोकार रखनेवाले ये गीत, मन को भीतर तक कुरेदने की क्षमता से पूरी तरह लैस है। पाबंदियों–मनाहियों के बीच भी जिंदगी झरने सी झर–झर झरती है। इनके गीतों में आज के जटिल सत्य का उद्घाटन तो है ही, साथ में गीतों की ऐसी रसात्मकता है, जो आजकल के नये नवगीतकारों में बहुधा गायब होती जा रही और नवगीत के नाम पर मुक्त छन्द जैसे बेतुके अखबारी शब्दों के गठजोड़ सामने आते जा रहे हैं या फिर चलन में हो चुके हैं। वास्तव में रसात्मकता ही काव्य या गीत की प्राणशक्ति है–'न हि रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते तत्र विभावानुभाव व्यभिचारसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:'

'रस के बिना काव्य उसी भाँति निष्प्राण है, जैसे आत्मा के बिना देह। रस की अनुभूति एक आनंदमयी चेतना है। (रस गंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन–डॉ. प्रेमस्वरूप गुप्त) भले ही यह वाक्य विवादास्पद क्यों न हो, लेकिन यह विवाद शाब्दिक है, तात्विक नहीं। रसभीनी कविता या गीत पढ़कर पाठक कहीं अधिक भावासिक्त हो जाते हैं, अधिक संवदेनशील।

जीवन उद्रेक भाव, अनुभावों और अनुभूतियों का सम्मिश्रित रसायन है। जब–जब जीवन किन्हीं संघर्षों, आघातों और तकलीफों को झेलता है, तब–तब वह और निखरता है। दु:ख का पारस जीवन को छूकर सोना बना जाता है, उन्हीं कुछ विह्वल क्षणों में जो रच जाता है, हृदय की संपूर्ण गहराई में उतरकर मन का हंस शब्दों के मोती बीन कर लाता है। वे ही गीतों–नवगीतों के पन्नों पर लोकधर्मिता का असली आभा प्रकट करते हैं, क्योंकि हम सभी एक सूत्र में बँधे हैं, सभी की मनोवृत्तियाँ लगभग मानवीय धरातल पर एक जैसी हैं। किसी भी मनुष्य या प्राणी का दर्द धरती के किसी दूसरे प्राणी के ही समान है, वही संवेदना, वही अनुभूति और वही संचेतना। फिर साहित्य इस अनुभूति का ही तो दर्पण है, रचनाकारों में जिसने जो भी देखा भोगा,वही तो रचेगा। इसीलिए साहित्यकार को अपने बनाए वृत्त और परिधि से बाहर निकलकर, जीवन का बेहद अनुभव समेटना बहुत आवश्यक है। दृष्टिकोण विस्तृत होते ही रचनाकार दुनिया को उसकी सार्वभौमिकता में देख सकेगा, उत्पीड़ित मानवता का दु:ख बाँट सकेगा और उसके आँसुओं से जो रचना प्रकट होगी, निकलेगी, वह अप्रतिम होगी, कालजयी भी। डॉ. अभय के अनुभवों का संसार बहुत बृहद् है, जीवन के जिस पड़ाव पर आज वे हैं, वहाँ तक अनुभव अनुभूतियों की एक अक्षय राशि पूँजीभूत हो जाती है। यही उनकी रचनाओं को भी गाभीर्य दे रहा है। इस लंबी यात्रा में थकान भी हो सकती है और कहीं ऊर्जा की ताजगी। आगे और आगे बढ़ने की उत्कट लालसा। 'टूटेंगे दर्प शिलाओं के' गीत मानवता की इबारत है। आज के आदमी के व्यक्तिगत दुखों और तकलीफों को दर्ज करते बहुत सारे गीत मानवीय अंतर्द्वन्द्वको प्रकट करते हैं। ऐसे गीतों में हाशिए का समाज बहुत शिद्दत से उभरा है। डॉ. शान्ति सुमन के शब्दों में कहना चाहूँगी–''उनके गीत पिछले कई वर्षों से चर्चा के केन्द्र रहे, रूमानियत और बासंती आहटों से परे, इनके गीत मनुष्य की तरह बात करते हैं और निरंतर व्यवस्था की नुकीली दुरभि–संधियों पर अपनी मानवीय शैली में प्रहार करते हैं। वह व्यवस्था को डराते नहीं, बल्कि उसके बदलाव और जन सापेक्ष होने का आवाहन करते हैं। ये कच्ची नींदोंवाले सपने नहीं देखते।''

डॉ. मनोहर अभय का कवि भारतीय संस्कृति और संस्कारों को समर्पित है। कवि ने तुलसी, शालिग्राम और चंदन, ब्रह्म कमल आदि के प्रयोग बेझिझक किये हैं। 'सेकुलरिस्ट' जो चाहे कहें, उन्हें इसकी परवाह नहीं। बड़ी पीड़ा से वे अपनी अंतरकथा बाँचते हैं–''हम तो ये तुलसी के पौधे/ कैसे हुए करील?/ नमन आरती चंदन वंदन/ लाखों अर्घ्य चढ़े/ बाँधे गये कलावे अनगिन/ नीचे शालिग्राम पड़े/ चौरे बैठी पाँव पसारे/ सामिष भोजी चील।'' यह संकेत आज के परिवेश में भारतीय संस्कृति के क्षरण का। वरेण्य ''शालिग्राम' नीचे पड़े हैं और ऊपर 'सामिषभोजी चील।'

तिलस्मी दुनिया के दम–खम की भी बात वे उसी मुस्तैदी के साथ करते हैं, जिस तरह उन्होंने विरोधाभाषी समय को, अपनी रचनात्मक की मुट्ठी में लेकर भींचा है। उन्हें सब कुछ एक रहस्य से भरा लगता है, अनिश्चयता की इसी ऊहापोह में वे कुछ यूँ विकल हो जाते हैं–''दूर तक अरण्य फैला/ गहरे तुहिन का/ सुनो, पीछा कर रहे/ वो काले हरिन का/ चलो देखें/ और कितना/ दमखम बचा है अंधेरों में/ रात को दिन में बदलना/ चाहते हैं सूर्यवंशी/ इधर सूरज पर लगा है/ ग्रहण खग्रासी/ ...तिलस्मी जंगी खजाने/ तिलमिला कर गिर रहे हैं/ सदियों पुराने मालखाने/ चलो देखें/ और कितना/ दमखम बचा है/ अंधे कुबेरों में।''

और फिर कुछ उम्मीदों की साँकले भी खटखटाते हुए कवि पूरी अलमस्ती से, शब्दों को टाँकता चलता है। उसी बेखुदी में कभी–कभी खुद को भी आँकता है, फिर विकल प्रतीक्षा सुनहरे सवेरे की करते हुए घने विश्वास के साथ कह उठता है–''और कुछ/ ठहरो सखे/ लेने गई है हवाएँ गंध के झोंके/ सिमटती जा रही है/ प्रतीक्षा की घड़ी/ टूटने को विवश है/ अँधेरे की कड़ी/ आ रहा अरुणिम सेवरा/ हाथ मुँह धोके/... उजाला नहीं देगा/ अबकी बार धोखे।''

राजनीति की सीलन भरी अँधेरी गलियों से भी कुछ पड़ी परतें उखाड़कर अपने गीत की दरों–दीवारें सँवारते हुए कवि तीखे आरोपों को भी व्यंग्यात्मक लहजे में, कहते हुए रोचक और दिलचस्प बना देता है–''टोकरी सिर पर धरे/ बेचे सफेदा आम दागी/ कीमतें मीना छूतीं/ ग्राहकों की नींद भागी/...बेकार थे घर में पड़े/ घुस गये तुम रैलियों में/ सेठ–साहूकार की मैली कुचैली थैलियों में/ खरीदा हुआ था मीडिया/...कमर पर पिस्तौल बाँधी/ पतलून में दस–पाँच गोले/ भून डाले आदमी/ भूने गये/ ज्यों हरे छोले/ आदमी है कि भूखा भेड़िया।'' बहुत ही मार्मिक हैं ऐसे गीत।

कवि की चाहत है कि रोशनी जगमगाती रहे। बुझ न पायें छोटे–छोटे कंदील या कहीं पालथी मारकर सदा के लिए बैठ जाए अँधेरा। सुबह की अलख जगाते, विश्वास का राग अलापते डॉ. मनोहर का कवि ऐसे ही शब्द रस के मन को फेरता मिलेगा, उजालों की आश्वस्ति बाँटता...

''बुझ न जाएँ देखना/ ये नए कंदील/ सूर्य के घोड़े थके/ हो रही है देर/ बछेरे अँधेर के/ कर रहे अँधेर/ कलुष कुहरा पी रही/ छलछलाती झील/...ले गये जलती मशालें/ दंगे फसादी भील।''

आज पर्यावरण विषाक्त हो चला है। घातक और जीवन को लीलने वाला। धरती आसमान सभी दुहाई दे रहे। रचनाकार का मन उदास है, नील कमल मुरझाने लगे हैं, कुहरा घना हो चला है, उम्मीद के पाँव झुलस रहे हैं, ऐसे में गीतकार सत्य की चादर बुनते हुए कबीराना अंदाज में कहता है–

''लोहित नदियाँ बही निरंतर/ मरी मछलियाँ पानी में/ छोटे–छोटे छिपे विषाणु/ मीठी से गुड़धानी में/ इतना सब कुछ हुआ/ तुम्हारी आँख नहीं खुली/ लगी पेड़ में आग/ जल गया/ पौधे कुम्हलाए/ लतिकाएँ मुँह बाँधे झूलसीं/ फूल नहीं मुस्काए/ झरती रही शबनमी बूँदें/ कलियाँ नहीं धुली... वर्गभेद की घातें लंबी/ बातें नपी–तुली।'' पर्यावरण की ऐसी बिगड़ती तबियत,

खासकर नदियों के बिगड़ैल स्वभाव। वे सूख रही हैं, गंध से भर रही हैं, बाढ़ या सूखे से गाँव के गाँव को नष्ट–भ्रष्ट कर रही हैं। उनका कोप मनुष्यता की पीढ़ियों को तबाह कर रहा है। फिर भी मनुष्य अपना काल स्वयं अपने कपाल पर लिख रहा है, तो कोई करे भी क्या करे?समय सभी को अवसर देता है, पर कोई बार–बार अवसर पाकर भी, समझकर भी न समझे तो क्या किया जाए?बस एक मनौती और दुआ। एक मनुहार नदी की–''नदी! हमारे गाँव होकर आना इधर/ सिमाने पर मिलेगी छोटी–बड़ी पथवारियाँ/ दूध पानी चढ़ाती सुहागिनें/ क्वारियाँ/ पानी / तलाशती पोखर/...फैलाना नहीं ऐ नदी! खुल लंबी आस्तीनें/ हथेलियों से पोंछना/ सदियों पुराने पसीने/ खुशियाँ मनाएँगे पसीजते हलधर।''

आज दुनिया एक अंधे कगार पर आकर टिक गई है, उस कगार से कहाँ जाना है, गिरना है या बच जाना है, कोई नहीं जानता। सब कुछ विषैला और घातक हो चुका है, बहुत से जीवन, जंतु धरती को सदा के लिए अलविदा कहने लगे हैं। स्थिति बहुत विकट है, गहरी समझदारी और वैश्विक मनस्विता ही अब कुछ कर सकती है, इसी संभावना को तलाशा और रोपा जा सकता है। धरती को बचाने के सिलसिले में–''कैसी सेंध लगाई तुमने/ सूराख हुए/ परकोटे में/ गुम्बद बैठे मरे कबूतर/ उजड़े चिड़ियों के औसारे/ कमर झुकी है मौलसिरी की/ छूटे सभी सहारे/ उलट गई खुशबू की गागर/ आँधी के झोटे में/ बची रह गई छान छपरिया/ आरक्षण कोटे में।''

मुद्दों की बात लोग बड़ी उलटफेर कर घुमाने की कोशिश करते हैं, सौ–सौ कसमें खाते हैं, पर फिर भी आधे अधूरे काम भी नहीं हो पाते, आलसी और निकम्मी दुनिया के लोगों से, अब रचनाकार का जी ऊब गया है, दरअसल कोई मुद्दा बचा ही नहीं, स्वार्थ साधने के सिवा, व्यक्तिगत स्तर पर पसरा हुआ सन्नाटा, दुनिया को तबाह कर रहा है, कोई भी अब खटना नहीं चाहता, बस सबको बैठे बिठाए मलाई खाने की आदत पड़ चुकी है, कार्य संस्कृति का विनाश हो रहा है, मशीनीकरण का यह सबसे बुरा दौर है, जब आदमी आदमी की संवेदनाएँ भी मशीनी हो चुकी है–''चहल पहल है गहमा गहमी/बातों का जमघट मुद्दों की भी कमी नहीं है/लगे सैकड़ों झंझट/ उलटफेर में रात गई/ असली बात भी बाकी है/ पेपरवेट पड़े प्रश्नों पर/ उत्तर कूड़ेदानी में/ उपसंहार लिखा था केवल/ पूरी एक कहानी में।''

दाम्पत्य जीवन में बढ़ते विघटन से कवि की संवेदना बुरी तरह आहत है। वह नहीं चाहता कि पति–पत्नी के संबंधों में खटास पैदा हो। वह संबंधों के धागों को तारतार होने से बचना चाहता है हर कीमत पर। घर छोड़कर जाती पत्नी को उसका आवाहन है, विमर्शवादी नहीं, समरसता की माधुरी से सम्पन्न– ''अंधी गली है साँकरी/ कहाँ जाओगे?/ लुटेरे जागे हुए हैं/ लौट आओ/ निमिष भर में फेंक दी सब चाभियाँ/ याद आई नहीं तुमको/ खैयाम की रुबाइयाँ?/ सर्पिणी सी रात है/ सँपेरे जागे हुए हैं/ लौट आओ/ रतनारे नयन से पोंछ लो/ बहता हुआ ये नीर/ लो संभालो पुरुषत्व का तीरों भरा तुणीर/ नव्यता के कमरे जागे हुए हैं/ लौट आओ।'' नारी पुरुष की विभाजक रीतियों में उसका विश्वास नहीं। कवि नारी को बराबर के पायदान पर देखना चाहता है।''मुट्ठियों में मत दबोचो/ उड़ान भरने दो/ पंख है बेचैन/ छूने का गगन/ चंद्रमा में बनाने को/ कुछ कर गुजरने दो/ हो तृप्ति की बरखा/ कामनाएँ सब नहाएँ/ प्यास के पहाड़ ऊँचे तरबतर भींग जाएँ/ आषाढ़ के बादल बरसने दो।''

ये आषाढ़ के बादल ही तो हैं, कवि के गीत–नवगीत, पुरातन को नूतन बनाते, बंजर को हरा–भरा करते और निष्प्राण में नवप्राण फूँकते, अविलम्ब अपनी अमृत गिरा से नवोन्मेष जगाते, हृदय को प्रेम के तरल से अभिसिंचित करते, वे धरा का, आसमान का, अभिषेक करने लगते हैं, ईश्वर उनकी वाणी में जागने लगता है और वे विश्व को जगाने अपने गीतों की दुंदुभि लेकर निकल पड़ते हैं। कवि के कथ्य में ही नहीं, शिल्प में भी नव्यता है। आशा है यह नव्यता भविष्य में कहीं अधिक निखार प्राप्त करेगी।

प्रकाशक–राजश्री प्रतिभा प्रतिष्ठान, नवी मुम्बइ

कविताएँ

नीलम सिंह
शिव इन्क्लेव,
इन्दिरानगर (थाने के पास) लखनऊ
मो.–9450309215

घर रिमोट से साफ़ नहीं होता

1. घर रिमोट से
साफ़ नहीं होता
उसके लिए
अटना पड़ता है
धूल से
गन्दगी से
मकड़ी के जालों से

झाड़ू की सींक की तरह
तोड़नी पड़ती है काया

दुखती कमर लेकर
घिसटना पड़ता है
घर के एक कोने से
दूसरे कोने तक
बहाना पड़ता है
आत्मा तक का पसीना

साफ घर देखकर
तुम खुश होते हो
नहीं देख पाते
मेरी खीज
मेरी टूटन
मेरी अनन्त थकान।

समझ में नहीं आता

2. समझ में नहीं आता
क्या–क्या चमकाऊँ मैं

घर के बर्तन
या बच्चों का चेहरा
या तुम्हारी कमीज़
या पूरी की पूरी गृहस्थी

ऐसे वक़्त में
जब खुद को चमकाना
सबसे जरूरी है
मैं अपने सने हाथ देखती हूँ
अपनी उलझी लटों पर हाथ फेरती हूँ
पल्लू से अपना पसीना पोंछती हूँ
और गमलों को पानी पिलाकर
बैठती हूँ टेबिल फैन के सामने
थोड़ी–सी लहराती हुई।

सच बताना

3. हाँ, हमीं ने की है
अपनी पीड़ा की खोज

हाँ, हमीं ने ढूँढे हैं
अपनी चोटों के राज़

हाँ, हमीं ने खोले हैं
अपनी अग्निपरीक्षाओं के प्रपंच

सच बताना
क्या तुम
कभी थे साथ हमारे
हमारी चोटिल दर्दीली लहूलुहान
कहानियों के बीच

क्या कभी बन पाये तुम
हमारे अशांत उत्तप्त कातर
जीवन के कोलम्बस।

समीक्षा :

कौमों के सहअस्तित्व और ऐतिहासिक सत्य की पड़ताल करता उपन्यास

डॉ. शोभा जैन
शुभाशीष, सर्वसम्पन्ननगर, इंदौर
मो. 9424509155

सुख हमेशा अकेले यात्रा करता है, जबकि परेशानियाँ हमेशा झुंड में चलती हैं, एक आती है, तो उसके साथ–साथ कई आ जाती हैं। (पृ. 75) हिंसक और हत्यारी भीड़ और उस हिंसा की भेंट चढ़े रिश्ते, संबंध और संवेदना की सूक्ष्म पड़ताल करता पंकज सुबीर जी के सद्यः प्रकाशित उपन्यास 'जिन्हें जुर्म–ए–इश्क पे नाज था' की पंक्तियाँ इतिहास बोध ही नहीं, वर्तमान में भ्रम संशय और भ्रान्तियों में जन्मे विरोधाभासों की वास्तविक परतें भी खोलती हैं। मोम के सारे पुतले चाहे हैं कि सारे सूरज नष्ट कर दिये जाएँ, समाप्त कर दी जाय सारी ऊष्मा, सारी गर्मी, ताकि मोम के पुतलों का साम्राज्य स्थापित हो 'भारतीय इतिहास से लेकर वैश्विक इतिहास के अथाह समन्दर में गोते लगाते हुए धर्म की सही अर्थों में पड़ताल करता उपन्यास अपने मौजूदा दौर से कई सवालों के जवाब देता है। ऐसे विषयों का मनोविज्ञान जो–जो ओढ़ी हुई मानसिकता का शिकार है, चाहे वो साम्प्रदायिकता हो, दंगे हो, धार्मिक कट्टरता या मानवीय त्रासदी। रामेश्वर नामक केंद्रीय पात्र पूरे घटनाक्रम का केंद्रीय पात्र होने के साथ इस बात का अहसास भी की, हमारे इर्द–गिर्द ऐसे अनेक रामेश्वर 'व्यक्ति' के रूप में हमारे समक्ष एक 'विचार' बनकर समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। गाँधी और जिन्ना से फोन वार्ता इसे समसामयिक बनाती हैं, तो कुछ तथ्यपरक लघु कथानक वर्तमान के छद्म परतें खोलते दिखाई पड़ते हैं–सरकारी जमीन पर कब्जा करने का इस देश में सबसे आसान तरीका है मंदिर बनाना। (पृ. 40) वही धर्म अफीम होता है, जो हमें अहसास ही नहीं होने देता है। जो हम कर रहे हैं, किसी नशे के गिरफ्त में आकर कर रहे हैं। (पृ. 224) ठीक इसी तरह हमें लगता है कि हम अपने तरीके से जी रहे हैं, लेकिन हकीकत यह है कि हम अपने धर्म के तरीके से जीवन जी रहे हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि मजहब का नशा सबसे सस्ता होता है। उपन्यास विभाजन की त्रासदी से लेकर धार्मिक भावनाओं के विदोहन और इतिहास के ऐसे ढके छिपे पहलुओं पर विमर्श करता है, जिनसे स्वतंत्रता संग्राम से लेकर समकालीन राजनीति तक धार्मिक भावनाओं की भूमिका का विस्तार होकर भी टकराव जन्में मसलन : 'धर्म जब सामाजिक स्तर पर कार्य कर रहा है, तबतक वह उतना नुकसान नहीं पहुँचाता है, लेकिन जब धर्म राजनीतिक सतर पर आ जाता है, तो वह नृशंस हत्यारे में बदल जाता है।' (पृ. 8)

लगभग 300 पृष्ठों में समग्र परिदृश्य को समेटता समीक्ष्य उपन्यास अपनी विधानुरूप भले ही कालखंड में लघु हो, किन्तु अपनी लघुता में अर्थवत्ता को गहराई देते हुए मूलभूत राष्ट्रीय मुद्दों पर तथ्यपरक कथानक रचता है। कहीं कहीं राष्ट्रव्यापी समस्या बन चुकी मॉब लीचिंग भी उपन्यास में निदेशन सम्पन्न संकेत देती दिखाई पड़ती है, जो केन्द्रीय पात्र रामेश्वर के एक कथन में महसूस किया जा सकता है–''सुनो, बच्चे! नफरत करना आसान है, लेकिन प्रेम करना बहुत मुश्किल। इसलिए ये दुनिया आसान काम को ही चुनती है। मार देना आसान है, मगर बचा लेना कठिन। इसलिए ज्यादातर लोग आसान काम चुनते हैं, याद रखना भीड़ जिस भी दिशा में जा रही होती है, वह दिशा और वह रास्ता हमेशा गलत होता है। भीड़ कभी सही दिशा में नहीं जाती हैं, इसलिए क्योंकि भीड़ स्वयं नहीं चलती उसे चलाया जाता है।'' बहरहाल तथ्यों के बेबाक बयानी उपन्यास की खूबी तो हैं ही, कहीं–कहीं खामी बनती भी दिखाई देती हैं।

समय और समाज के जटिल यथार्थ के सरलीकरण के रूप में उपन्यास कौमों के सहअस्तित्व एवं त्रासद पहलुओं की पुनर्व्याख्या भी है। समग्रतः एक कालखंड को पानी की तरह बहते हुए इसमें महसूस किया जा सकता है, तो उसी कालखंड की पुनरावृत्ति के संकेत समकालीन समय में एक ठहरे हुए पानी के रूप में दिखाई पड़ते हैं। हमने इतिहास से लिया क्या और इतिहास ने हमें दिया क्या जैसे प्रश्न पाठक के अंतर्द्वन्द्वका कारण बनते हैं। राजनीति का परवान चढ़ते धर्म, जाति–धर्म जो राजनीति के अपराधीकरण से ग्रस्त होकर किसी घटना दुर्घटना की तरह हमारे समक्ष घटित होते दिखाई देते हैं, को इसमें बखूबी रेखांकित किया है। 'जिन्हें जुर्म–ए–इश्क पे नाज था' हिन्दी के एक बेहतरीन उपन्यास का ऐसा कथानक, जिसमें इतिहास के साथ समकालीन समानांतर चलता दिखाई देता है, इसे उपन्यास की उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है।

–शिवना प्रकाशन, सीहोर, मध्यप्रदेश–1

नीरज नीर
अशोकनगर, राँची,
मो0–8789263238

गीत

चलो बात कोई नई अब सुनाओ
पुरानी कहानी से आगे बढ़ें हम
जो बीता, जो छूटा, हुआ सो हुआ जो
नये पृष्ठ पर रंग नव अब भरें हम

कई साल पहले किया क्या था किसने
किसी की लूटी थी, किसी को मिली थी
वो झगड़े पुराने, वो किस्से पुराने
भली थी किसी की, किसी की बुरी थी
बुझी आग को अब न फिर से जलाओ
कहानी नई खुशबुओं से लिखें हम

नगर से, डगर से, गली, गाँव, कूचा
चले बात ऐसी कि नफरत मिटाए
नई हो हवाएँ, नई रोशनी हो
नई बात सोचें, नये गीत गायें
मशालें उठाओ दिशा जगमगाओ
किसी के रोके नहीं अब रुकें हम

यहाँ के सिवा ओ ठिकाना कहाँ है
दुनिया से बेहतर ये घर है हमारा
करें कोशिशें और इसे हम बचाएँ
यहीं पर है जन्नत, यहीं स्वर्ग सारा
चलो फूल मिल के अमन के खिलाओ
किसी के भूलावे नहीं अब पड़ें हम

चलो बात कोई नई अब सुनाओ
पुरानी कहानी से आगे बढ़ें हम
जो बीता, जो छूटा, हुआ सो हुआ जो
नये पृष्ठ पर रंग नव अब भरें हम...।

समीक्षा

दर्द की दास्तान : बदलते परिवेश

डॉ. वीरेन्द्र झा
अधिवक्ता, मधुबनी
मो.–9470669886

समाज और परिवार इस भौतिकवादी दुनिया में तेजी से टूटता जा रहा है। मानवीय मूल्यों का मूल्य खाक रह गया है। इंसान को इंसान से डर लगता है। आपसी विश्वास, श्रद्धा, प्रेम आदि बातें बनकर रह गयी हैं। बुजुर्ग को देखनेवाला, दर्द की दवा देनेवाला कोई नहीं।

ऐसी दशा में आलोक भारती अपने 'बदलते परिवेश' की रचना कर मरहमपट्टी करने में बेशक कामयाब रहे हैं। 21 अनूठी कथाओं का संग्रह बदलते परिवेश–वास्तव में बदलती इस रंगीन दुनिया की बदसूरत तस्वीर है। मुख पृष्ठ ही औद्योगिक चकाचौंध और इससे बिगड़ते रिश्ते का हाल बयाँ करती है।

समाज सेवा के नाम पर लूटनेवाले लुटेरों का असली चेहरा दिखाकर उनकी पोल खोलती कहानी–'टूटे हुए चेहरे' सोचने को विवश करती है।

'दरिन्दे' में रेलकर्मी का अमानवीय चेहरा दिखाई देता है, तो 'बड़की बुआ' नारी प्रताड़ना की तस्वीर प्रस्तुत करती है। 'हम नहीं सुधरेंगे' में चरमपंथियों में बुजुर्ग की व्यथा है। गिरधर बुढ़ापे में अपने बेटे विनोद से प्रताड़ित होता है। छोटे लड़के सरोज ने बाप से माल टानकर शहर में आलीशान घर बना लिया और बाप को यहाँ घरेलू नौकर बनाकर रख दिया। गिरधर अपने पुत्र का टिफिन में खाना लेकर कार्यालय पुत्र के पास गया, तो पुत्र ने अपने सहयोगियों से उसका परिचय घरेलू नौकर के रूप में दिया। गिरधर टूट गया और शहर से गाँव लौटते वक्त ट्रेन में दम तोड़ दिया। यह घर–घर की आज कहानी है।

'तूफान के कगार पर' में बेटे–बहू की प्रताड़ना से तंग आयी बूढ़ी माँ घर से निकाल दी जाती हैं। 'दरिन्दे' में सब्जी बेचनेवाले यात्रियों की दास्तान है, जो पुलिस जुर्म के शिकार होते हैं। लावारिस एवं पूर्णाहुति श्रेष्ठ कथा है। अकाल मौत, जिन्दगी, मोहरा, पश्चाताप भी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

कथाओं में महज बेवसी की झलक नहीं है, अपितु समस्याओं के समाधान के भी रास्ते हैं। भाषा प्रवाहपूर्ण है। वातावरण का बखूबी निर्माण हुआ है। पात्र का बेजोड़ चरित्र–चित्रण है। सभी दृष्टियों से कथाएँ पूर्ण हैं।

छोटी–छोटी घटनाओं को लेकर आलोक भारती ने कथा का रूप देकर बड़ी–बड़ी बातें कहीं हैं। कथाओं में रोचकता है। मिथिला की भाषा, दर्द का बयान है। आंचलिक भाषा के प्रयोग से कथा की सत्यता बढ़ी है। शब्दों का आडम्बर है और न ही दिगर भाषा के चयन से परहेज और गुरेज।

कथा अपने आकार–प्रकार में भी पूर्ण है। मौलिकता कूट–कूट कर भरी है। कथा का शीर्षक भी लघु, आकर्षक एवं विषय के अनुकूल हैं। संवाद शैली के उपयोग से कथाओं की पठनीयता बढ़ी है। कथाओं में कल्पना की उड़ान कम और यथार्थता अधिक है। 'इंसाफ की आस' लघुकथा होते हुए भी पूर्ण है। 'हम नहीं सुधरेंगे' लघु कथा होते हुए भी लघु नहीं है। इसमें व्यंग्य है। 'बदलते परिवेश' लंबी कथा होने के बाद भी ऊबाऊ नहीं है। पूर्णाहुति में भी व्यंग्य है। 'जिन्दगी' भी कमोबेश इसी किस्म की कथा है।

'बदलते परिवेश' इसी बदलती दुनिया की सच्ची तस्वीर है। इन कथाओं ने समाज और परिवार की पोल खोल दी है।

कथाकार आलोक भारती ने अपनी लेखनी से समाज को नई दिशा दिखाई है, जो काबिले तारीफ है। इसके पूर्व 'यथार्थ के साये में', 'समय के उस पार', 'दरकते प्रतिबिम्ब', 'अंतत:', 'सत्य की खोज', 'पल भर के लिए' कथा संग्रह उनकी आ चुकी हैं। मगर जो अनुभव, यथार्थ–'बदलते परिवेश' में परोसा गया है, उससे पाठक तृप्त होंगे ही।

हिन्दी कथा साहित्य जगत में इसका वही सम्मान होगा, जो युद्ध के मैदान में मिसाइल का होता है। यद्यपि युद्ध अशांति का और साहित्य शान्ति का प्रतीक है। इसे पढ़ने के बाद ही पाठक इसकी महत्ता का सही मूल्यांकन कर सकेंगे। बहरहाल मैं इसे आधुनिक युग की श्रेष्ठ कथा मानता हूँ। इसे हल्के में नहीं गंभीरता से लेना होगा। एक साधारण कस्वा का पाठक लेखक इतना सजीला, इतना गंभीर, इतना माकूल चित्रण करता है और इतना महत्त्वपूर्ण विषय का चयन करता है, यह मामूली बात नहीं है।

–जानकी दानी प्रकाशन, रोहिणी, नई दिल्ली–42

कविता

ज्ञानीचोर शोधार्थी,
रघुनाथगढ़ सीकर (राजस्थान)
मो.9001321438

टूट रही हैं परत

टूट रही हैं परतें विश्वास की
दरक रहें हैं पहाड़ चोट खाकर
बातों के भूकंप से ही अब तो
निकल रहा लावा क्रोध का
फट रही धरा जीवन की
बेचैनी से ही निकलेगा अंकुर
फोड़कर समाज की कुंठा
जीवन के पैमाने नापने को
गढ़े जायेंगे नये सिद्धांत
फिर, वही नये आचार्य
नये शास्त्र और व्याख्याकार
फिर फिसलेंगी जबान कभी
उत्पन्न होंगे आलोचक भी
फिर लिखा जाएगा इतिहास
जिक्र होगा हमारा, पढ़ेंगे लोग
फिर तरसेगा जीवन
फिर, भंग होगा साम्य जीवन
तब न कोई बुद्ध होगा न गाँधी
होंगे अराजक लोग और व्यवस्था
लोकतंत्र बदलेगा अराजकतंत्र में
ऐसे ही बदलेगी संसृति सृष्टि
थकेगा सर्जन का देवता।

नीतू कुमारी
कसेरू मुकुंदगढ़ झन्झुनू
(राजस्थान)

चल राहगीर

चल राहगीर, वक्त आ गया तेरा
तू ठान ले और बना हौंसले मजबूत
ये दुनिया कुछ भी नहीं है
है बस, इसमें कुछ तेरा कुछ
मेरा
तू भाग्य को मत कोस
भाग्य बना नहीं अभी तेरा
चल राहगीर! वक्त आ गया तेरा
ये राहें बड़ी कंटीली है, पर
काँटों में ही गुलाब खिला करते हैं
अपने लिए यहाँ खुद लड़ना पड़ता है
ये रीत सदैव चली आई है
क्रान्ति ही हमेशा बदलाव लाई है
चल राहगीर! वक्त आ गया तेरा
तू बैठा रह गया अगर यहाँ तो
तेरा जमीर बैठा रह जाएगा
खुद के लिए ना सही तो तुझे
अपने जमीर के लिए लड़ना होगा
चल राहगीर! वक्त आ गया तेरा।

समीक्षा

भारतीय राष्ट्रवाद का क ख ग

डॉ. के.सी. अजयकुमार
93 ए तेजस, कट्टाचल रोड तिरुमाला
तिरुचनानाथपुरम, केरल
मो.9447944721

श्रीविजय रंजन की रचना 'भारतीय राष्ट्रवाद का क ख ग' सच्चे अर्थों में भारतीय राष्ट्रवाद संबंधी सभी परिप्रेक्ष्यों की खोज करती है। इसमें केवल समस्याओं का उत्तर नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद के मूलभूत तत्त्वों के दर्शन का, उसके आध्यात्मिक और भौतिक आधारों का परिचय भी है। लेखक राष्ट्रीयता से संबंधित विविध गलतफहमियों व पाश्चात्य चिंतकों के विचारों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए भारतीय राष्ट्रीयता के मूल सिद्धांत के रूप में वैदिक अभिव्यक्ति 'माता भूमि पुत्रोऽहम्' को प्रस्तुत करते हैं। इसी दृष्टिकोण के आधार पर जब इस देश की जनता भारतमाता कहती है, उसके पीछे जो आत्मसंबंध है, उसके संबंध में सोचने को कृति–लेखक हमें बाध्य करते हैं। हम स्वाभाविक रूप से पूछते हैं कि इस भूमि में व्याप्त पंचभूतों से ही यह शरीर रूपायित है, तो स्वाभाविक रूप से पृथ्वी से उत्पन्न सभी के लिए यह पृथ्वी माँ ही तो है। इसी परिप्रेक्ष्य में लेखक भारतीयता के स्वरूप काभी समग्र विश्लेषण करते हैं। आसेतु हिमाचल विस्तृत इस भू–प्रदेश की सांस्कृतिक, दार्शनिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, आर्थिक, ऐतिहासिक संचेतना के रूप में प्रस्तुति करते हैं। इनमें से प्रत्येक का ऐतिहासिक विश्लेषण करते लेखक समझा देते हैं कि इनका ऐतिहासिक और वर्तमान महत्त्व क्या है। 'भारत क्या है, भारतीयता क्या है' जैसे अन्तर्निहित प्रश्नों का विस्तृत विवेचन लेखक के गहन अध्ययन और गरिमामय ज्ञान का निदर्शन करा देता है।

भारत की राष्ट्रीयता के संबंध में कहते समय आज की शिक्षा यह पूछने को बाध्य करती है कि विभिन्न सामंती राज्यों में बँटे भारत की राष्ट्रीय एकता क्या है, कहाँ तक है?इस प्रश्न का उत्तर भी 'भारत का प्राचीन एकात्मक राष्ट्रत्व' शीर्षक के अंतर्गत लेखक विस्तार से विवेचित करते हैं। उक्त विवेचन में भारत की महान संस्कृति के चिंतन की ओर लेखक हमें ले जाते हैं। लेखक भारतीय संस्कृति का भी विस्तृत विवरण पेश करते हैं। विशिष्ट जीवन–दर्शन, उदात्त वैश्विक दृष्टि, ब्रह्मवाद, अध्यात्मवाद, अवतारवाद, कर्मफल एवं पुनर्जन्म सिद्धांत आदि ... वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, पंच महायज्ञ जन्मऋण आदि–आदि विभिन्न विषयों का गहन परिचय भी हमें इस कृति में प्राप्त होता है।

कृति में राष्ट्रवाद संबंधी भारतीय, भारतीयेतर मनीषियों के विचारों को भी लेखक प्रस्तुत करते हैं। इनमें महात्मा गाँधी, डॉ. एस. राधाकृष्णन, नेहरू, लोकनायक जयप्रकाश नारायण आदि अनेक मनीषियों के विचार की ओर संकेत देने के साथ–साथ भारतीय राजनीति का अभिशाप, वामपंथी कम्यूनिस्टों के राष्ट्रवाद संबंधी विकृत दृष्टिकोण भी इसमें हम देख सकते हैं। इसी संदर्भ में भारतीय राष्ट्रवाद के ध्वजवाहक संगठन 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के दर्शन को रेखांकित करते हुए लेखक का कथन है–'संघ की प्रत्यक्ष गहन राष्ट्रवादिता को, उसकी राष्ट्रीय उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता।

पिछले लगभग 100 वर्षों के बाद राष्ट्रवाद भारत में चर्चा का विषय है। पर पिछले 8 वर्षों से यह चर्चा अधिक जोरों पर है, शायद इसलिए कि भारत की राष्ट्रवादी पार्टी अब भारत का शासन कर रही है। स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रवादियों को हिन्दुत्ववादी व साम्प्रदायिकता कहने की आदत पड़ी थी। ऐसी विशिष्ट स्थिति में यह प्रश्न उठता है कि वास्तव में राष्ट्रवाद और भारतीय राष्ट्रवाद क्या है?क्या राष्ट्रवाद जिस प्रकार वर्तमान में कुछ विपक्षी पार्टियों द्वारा प्रचारित है, उसके अनुसार केवल हिन्दुत्ववादी और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण है या भारतभूमि की आत्मा से जुड़ा हुआ राष्ट्रबोध प्रमाण है?

राष्ट्रवाद पर भारतीयेतर विचारकों के अभिमतों का उल्लेख करते समय लेखक एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका की व्याख्या भी उद्धृत करते हैं, जो विश्वभर के राष्ट्रीयता संबंधी दृष्टिकोण का भी परिचय देता है–''राष्ट्रवाद एक ऐसी मनोदशा है, जिसमें व्यक्ति अपने राष्ट्र के प्रति यह भक्तिभाव ही भारती राष्ट्रवाद की मूल चेतना में है। आगे लेखक ने बर्ट्रैंड रसेल, ए.एम. कोहलर, मार्टिन लूथर किंग, मैक डोनाल्ड आदि पश्चिमी विचारकों के चिंतन का उल्लेख किया है। साथ ही उन्होंने राष्ट्रवाद विरोधी भारतीयेतर विचारकों के अभिमतों को भी पुस्तक में स्थान दिया है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रवाद से लाभ, राष्ट्रवाद की उपेक्षा की हानि, राष्ट्रवाद का व्यावहारिक स्वरूप आदि पर भी विवेचन– विश्लेषण श्रीरंजन जी ने किया है। देश में संविधान, वाणिज्य, विदेशनीति आदि में भी राष्ट्रीयता के भाव को क्या स्थान होना चाहिए, उस ओर भी लेखक ने प्रकाश डाला है।

संक्षेप में कहा जाए तो भारतीय राष्ट्रवाद संबंधी गहन विश्लेषण के माध्यम से इसका विस्तृत परिचय देने में यह रचना सफल हुई है। संभवतः यह हिन्दी साहित्य के लिए ही नहीं, भारत राष्ट्र के लिए भी लेखक की महानतम देन है। यह भारतीय राष्ट्रवाद संबंधी सभी विपरीत, राष्ट्रविरोधी धारणाओं से बचने और 'राष्ट्रीयवर्धना' के आदर्श को आत्मसात् करने के लिए पर्याप्त ज्ञान पाठक को प्रदान करता है।

विकल्प प्रकाशन, सोनिया विहार, दिल्ली–90

समीक्षा

तुम भी नहीं : नये अंदाज की तहरीर

धर्मेन्द्र गुप्त, सम्पादक
माँ शीतला भवन, गायघाट, वाराणसी
मो–8935065229

अनिरुद्ध सिन्हा हिन्दी ग़ज़ल के सर्वाधिक चर्चित हस्ताक्षरों में से एक हैं। सात ग़ज़ल संग्रह एवं ग़ज़ल आलोचना पर केन्द्रित सात पुस्तकों के माध्यम से हिन्दी ग़ज़ल कोष को समृद्ध कर उन्होंने समकालीन ग़ज़लकारों के मध्य अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। ग़ज़ल आलोचना पर कार्य करते हुए उन्होंने स्थापित, संघर्षशील एवं नये ग़ज़लकारों पर बड़ी ईमानदारी से लेखनी चलायी है, वहीं ग़ज़ल सृजन में भी उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता का ईमानदारी से निर्वाह किया है। कथ्य की गंभीरता, शिल्पगत सावधानी, विषयानुकूल शब्द चयन, अभिव्यक्ति की विशिष्ट शैली, भरपूर सम्प्रेषनीयता आदि विशेषताओं से युक्त उनकी ग़ज़लें पाठकों से बड़ी सहजता से संवाद करती है। भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली से प्रकाशित अपने नवीनतम संग्रह 'तुम भी नहीं' में भी अनिरुद्ध सिन्हा अपने विशिष्ट तेवर के साथ उपस्थित हैं। संग्रह से गुजरते हुए सुखद अनुभव हुआ कि ग़ज़लकार ने अपने कालखंड को पैनी दृष्टि से देख अैर महसूस किया है एवं यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़े होकर अपनी अनुभूतियों को मोहक अंदाज में अशआर में ढाला है। इस संग्रह में उन्होंने जीवन के विविध आयामों को बड़ी सहजता से प्रस्तुत किया है, चाहे वे राजनीतिक एवं सामाजिक विसंगतियाँ हों, मानवीय संबंधों का यथार्थ हो अथवा समय की क्रूरता हो। यहाँ तक कि कोरोना की विभीषिका पर भी उन्होंने मार्मिक ग़ज़लें कही हैं।

किसी रचनाकार की पहचान तभी निर्मित होती है, जब उसके पास अपना चिंतन, अपनी दृष्टि एवं अपनी भाषा–शैली हो। इस दृष्टि से अनिरुद्ध सिन्हा एक सफल रचनाकार सिद्ध होते हैं। अपने समकाल को वे अपनी ग़ज़लों के साथ लेकर चलते हैं। समीक्ष्य कृति की पहली ही ग़ज़ल इस बात को सिद्ध करती है। लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के वर्तमान यथार्थ को उजागर करता है। इस ग़ज़ल का एक शेर द्रष्टव्य है–

''सारी बेकार की खबरें ही छपा करती हैं
काम की बात तो अखबार से कट जाती है।''(पृ. 9)

लोकतंत्र के नाम पर सत्ता प्राप्त करनेवाले कुर्सी पर बैठते ही जनता के किये गये सारे वादे भूल जाते हैं। भोली भाली जनता ठगी जाती है और ऐसे बहुरूपियों के शासन में जीने के लिए विवश हो जाती है। मन मस्तिष्क में बार–बार यही प्रश्न उठता है–

''कब तलक जीते रहेंगे हम दुखों के दरमियाँ
कब कोई काबिल नया सरदार देखा जाएगा।''(पृ. 10)

गरीब जनता की पीड़ा सत्ताधारी भला कब समझ सकते हैं–

''जिसने भी गरीबी का चेहना न कभी देखा
समझेगा भला कैसे इन आँखों का भर जाना।''(पृ. 11)

स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् जिन आँखों ने सुराज के सपने देखे, वे आज भी प्रतीक्षारत हैं कि उनके सपने साकार हो–

''आप ही कहिये भला कैसे भुला दें हम इन्हें
जो पुराने ख्वाब आँखों के हैं अब तक रूबरू।''(पृ. 59)

अनिरुद्ध जी भलीभाँति जानते हैं कि आज के रहवरों का जनता के दुख–दर्द से कोई सरोकार नहीं है। ये सत्तालोलुप जन हित से अधिक निज हित की बात सोचते हैं। ऐसी दशा में अपनी समस्याओं के समाधान एवं सही अर्थों में जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना के लिए जन–जन को प्रयास करना होगा और यह प्रयास सकारात्मक होना चाहिए–

''खुशी का देखना मौसम जरूर आएगा
अगर हमारे सँभाले सँभल गया सब कुछ।(पृ0 78)

वहीं अपने कर्तव्य से विमुख होकर सियासी रोटियाँ सेंकनेवाले सियासतदानों से वह कहते हैं–

''तुम अहले सियासत हो हम अहले मोहब्बत हैं
तुम आग लगाते हो, हम आग बुझाते हैं।''(पृ. 88)

वर्तमान कालखंड का एक तिक्त यथार्थ यह है कि लोग मिथ्याचारियों का ही साथ देते हैं। परिणाम यह होता है कि सत्य बार–बार पराजित होता है, इस वास्तविकता का अनिरुद्धजी कुछ इस अंदाज में व्यक्त करते हैं–

''सत्य पराजित रोज हुआ करता है जिनसे
साथ उन्हीं के सब हो लेंगे क्या कर लेंगे।''(पृ. 15)

आज जो बाहुबली हैं, अपराधी प्रवृत्ति के हैं, लोग उन्हीं को बड़ा आदमी मानते हैं, उनके आगे नतमस्तक होते हैं। इस कटु यथार्थ पर व्यंग्य द्रष्टव्य है। मुझे भी लोग बड़ा आदमी समझने लगे गुनहगारों में मेरा भी नाम आया है।(पृ. 64)

वर्तमान समय में व्यक्ति भीड़ का हिस्सा बनता रहा है और भीड़ केवल शोर करती है, ऐसे में कुछ कहना सुनना कैसे संभव हो–

''हर तरफ गूंजती हैं आवाजें
क्या कहा जाय क्या सुना जाए।''(पृ. 27)

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सियासत पैठ गयी है। साहित्य जगत् भी इससे अछूता नहीं है। साहित्यकारों के भी अपने–अपने खेमे बन गये हैं और वे अपने वास्तविक लक्ष्य से भटककर रचनात्मकता को दूषित कर रहे हैं–

''अदबी लोगों के ये अपने–अपने खेमे
शुद्ध हवा में विष घोलेंगे क्या कर लोगे।''(पृ. 15)

वर्तमान युग में बाजारवाद जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तेजी से पाँव पसार रहा है। बाजारवाद के प्रभाव में आकर हम अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से विमुख हो रहे हैं–

''इस नये विज्ञापनों के दौर से
सभ्यता के शब्द सारे मर गये।''(पृ. 87)

इस अर्थ लोलुप, भौतिकतावादी युग में विकास की दौड़ हो रही है, किन्तु इस दौड़ में कितनी ही साँसें थम जा रही हैं। विकास का अर्थ यह तो नहीं कि हम जीवन की आहुतियाँ ले लें, यदि ऐसा होता है कि इसका अर्थ है कि विकास का यह उन्माद हमें विनाश के मार्ग पर ले जाएगा–

''हद से बढ़कर है तरक्की का जुनून
और बुझती जिंदगी साँसों में है।''(पृ. 38)

झुग्गी–झोंपड़ी में रहनेवाले, बड़ी कठिनाई से दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करनेवाले सर्वहारा वर्ग के उत्थान के बिना क्या राष्ट्र का विकास संभव है?यह ज्वलंत प्रश्न है।

सर्वहारा वर्ग का भौतिक एवं प्राकृतिक दोनों प्रकार की आपदाएँ सहनी करनी पड़ती है–

''सावन है पास और हवा का दबाव भी
दीवार गिर न जाए मेरा घर उदास है।''(पृ. 40)

ऐसा नहीं कि इस संग्रह में विसंगतियों को उजागर करनेवाली एवं व्यवस्थाविरोधी ग़ज़लें ही हैं। कई ग़ज़लों में प्रेमपरक अशआर भी हैं, जो दिलकश अंदाज में कहे गये हैं। यथा–

''कहाँ मैं भी रहा वादे पर कायम
उसे कैसे मैं कह दूँ बेवफा है।''(पृ. 82)

यह जानकर भी तेरे साथ चल रहा हूँ मैं
किसी भी मोड़ पर मुझको तो छोड़ सकता है।''(पृ. 70)

उपर्युक्त दोनों अशआर में प्रेम का आधुनिक स्वरूप बड़ी सादगी से अभिव्यंजित हुआ है। वर्तमान समय में दोस्ती, भाई चारा आदि शब्दों के अर्थ बदल गये हैं। हम जिसे दोस्त बनाते हैं, जिसके प्रति बंधुत्व का भाव रखते हैं, जिसके प्रति उदारता दर्शाते हैं, वही हमसे विश्वासघात कर बैठता है–

''जिसे किराये पर हमने दिया था रहने को
उसी के कब्जे में अपना मकान है भाई।'' (पृ. 18)

और जब हम कठिनाई में जी रहे होते हैं, हमारा दिल जख्मों से भरा होता है, तो ऐसे में आज के तथाकथित दोस्त हमारे जख्मों पर मरहम लगाने के स्थान पर नमक लगाने की फिराक में रहे हैं–

''नमक लेकर खड़े हैं दोस्त सारे
यह मेरे जख्म की कैसी दवा है।'' (पृ. 83)

वर्तमान युग में मानवीय संबंध खोखले होते जा रहे हैं, रिश्तों में चाशनी कम होती जा रही है। हम एक दूसरे के साथ चल तो रहे हैं, लेकिन अजनबी की तरह–

''हैं साथ साथ ही लेकिन हैं अजनबी की तरह
हमारा शहर नया है नई सदी की तरह।'' (पृ. 39)

अनिरुद्ध जी अति संवेदनशील रचनाकार हैं, पिछले दो वर्ष मानव जाति ने कोरोना महामारी के बीच कैसे व्यतीत किये, यह सर्वविदित है। इस अत्यन्त मार्मिक विषय पर उनकी लेखनी स्थिर न रह सकी, उन्हें लिखना ही पड़ा–

''है शोर इतना खामोशियों का
है बोझ इतना अकेलेपन का
हर एक घर का यही है मौसम
जो कुछ इधर ही वही उधर है
हथेलियों पर पड़े हैं आँसू
किसे है फुर्सत जो बढ़के देखे
जिधर भी देखो बिछी हैं लाशें
यह एक मंजर नगर–नगर है।'' (पृ. 42)

प्रयोगधर्मिता आज के समय की माँग है, अनिरुद्धजी भी प्रयोगधर्मी रचनाकार हैं समीक्ष्य कृति में उन्होंने अनेक स्थल पर नये प्रयोग किये हैं, यथा–

''धूप के सायबान में चिड़िया
आबो दाने को ढूंढ लेती है।'' (पृ. 68)

उक्त शेर में धूप के सायबान सर्वथा नया प्रयोग है और एक नया बिम्ब प्रस्तुत करता है। अनिरुद्ध सिन्हा का मानना है कि ग़ज़लकार को कथ्य और शिल्प दोनों को लेकर समान रूप से गंभीर रहना चाहिए, तथापि कथ्य की गंभीरता एवं सार्थकता बनाए रखने के लिए अत्यधिक आवश्यक होने पर शिल्पगत समझौता किया जा सकता है, चाहे उसकी आलोचना ही क्यों न हो–

''जरा सी चूक पर मिसरों का नब्ज क्या टूटी
ग़ज़ल के शेर को यारों ने भी नकार दिया।'' (पृ. 69)

निश्चित रूप से 'तुम ही नहीं' अनिरुद्ध सिन्हा के प्रतिनिधि ग़ज़लों का एक ऐसा मोहक संग्रह है, जिसमें वर्तमान कालखंड के अनेक चित्र उकेरे गये हैं। देश, समाज एवं जनजीवन के यथार्थ की अभिव्यंजना के रूप में यह कृति ग़ज़लप्रेमियों के मन मस्तिष्क पर दीर्घकालीन प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। नये अंदाज की यह पठनीय कृति ग़ज़लप्रेमियों से मानो अपील कर रही हो–

''एक नए अंदाज की तहरीर हैं हम
आप हमको भी कभी सरकार पढ़िए।'' (पृ. 91)

अनामिका सिंह 'अना'
शिकोहाबाद, फिरोजाबाद (उप्र)
9639700081

कविताएँ

अनुसंधान चरित पर तेरे

अनुसंधान चरित पर तेरे
होंगे विकट गहन
सधी चाल से तय राहों पर
चलता जा रे मन

तुझे बहा ले जाने लहरें
आएँगी वाचाल
चाहेंगे बदचलनी अंधड़
उखड़े संयम पाल

अवरोधों के विशद अँधेरे
होंगे और सघन

गतिविधियों पर लोग रखेंगे
टेढ़ी तिरछी आँख

नहीं हटेंगे पीछे यदि, जो
पड़े काटने पाँख

नहीं चौकना संभव है वे
निकलें अगर स्वजन

सदियों से माना बेहद है
ऊबड़–खाबड़ राह
रही मुखरता की प्रतिद्वंद्वी
दास्तारों की डाह

घुटने टेकेगा दृढ़ता पर
सम्मुख मान दमन

2. अम्मा की सुध

शाम सबेरे शगुन मनाती
खुशियों की परछाई
अम्मा की सुध आई

बड़े सिदौसे उठे बुहारे
कचरा कोने–कोने
पलक झपकते भरकर देती
रोज़ भूख को दोने

बचे–खुचे खाने से अक्सर
अपनी भूख मिटाई
अम्मा की सुध आई

तुलसी चौरे पर मंगल के
रही चढ़ाते लोटे
चढ़ बैठी जा खुशियाँ उसकी
जाने किस परकोटे

गौर किया कब आँखों में थी
जमीं पीर की काई
अम्मा की सुध आई

पूस कटा तो बुने रात–दिन
दो हाथें ने फँदे
आठ पहर दिन–रात उठाये
बोझ थके न कँधे

एक इकाई ने कुनबे की
जोड़े रखी दहाई
अम्मा की सुध आई

बाँधे रखती थी, कोंछे में
समाधान की चाबी
उनके होने भर से बनती
बाखर द्वार नवाबी

अनपढ़ बाँचे, मौन पढ़ी थी
जाने कौन पढ़ाई
अम्मा की सुध आई।

3. जल रहा जल

जिंदगी की जंग लड़ती
गाँव बाहर
बह रही है एक नदिया
बह रही है मूक रह
सदियों से हरे बदलाव से
जल रहा जल, दर्द पाया
सभ्यता के घाव से
प्राण खेतों की बनी है
हर किनारे
छाँव देते वृद्ध वट के
पग पखारे
प्राण देने में खुशी है
बह निरंतर
कह रही है एक नदिया
इस नदी को इस सदी ने
पूजकर दीं यातनाएँ
कर प्रदूषित पढ़ रही है
वक्ष पर शगुनी ऋचाएँ
कल यही देखेंगे हम
संकेत सारे
घाट का घट पाटते
बस प्रेत सारे
उत्सवों संग मीच का सब
कीच गहकर
दह रही है एक नदिया।

समीक्षा

फिर–फिर लौटेंगे स्पार्टकस बनकर

प्रेमनन्दन
राजाजीपुरम, लखनऊ
मो. 9336453835

विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन में सक्रिय सहभागिता निभानेवाले वरिष्ठ कवि, समीक्षक, संस्कृतिकर्मी और पत्रकार कौशल किशोर मूलतः राजनीतिक चेतना के कवि हैं। वे अपनी कविताओं में इस जिम्मेदारी को पूरी निष्पक्षता, समझदारी और ईमानादारी से निभाते दिखाई देते हैं। उनका कवितासंग्रह 'वह और नहीं महानद थी' बोधि प्रकाश से हाल ही में प्रकाशित हुआ है, जो काफी चर्चित रहा। वैसे तो इस संग्रह में दो उपशीर्षकों में बँटी विभिन्न रंग–ढंग और तेवर की चौंसट कविताएँ शामिल हैं, लेकिन कौशल किशोर की अधिकांश कविताओं का मूल स्वर राजनीतिक है।

कौशल किशोर जी की कविताओं में सत्ता प्रतिष्ठानों के विचलनों, चालबाजियों, तिकड़मों, झूठ–फरेब और लोकतंत्र के नाम पर नव–सामंतवाद को पनपाने–पोसनेवाली पूंजीवादी धूर्तताओं का बड़ी बारीकी और गहराई से विश्लेषण किया गया है। उनकी कविताएँ अपने समय की सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक विसंगतियों पर गहरी चोट करती है। उनकी कविताएँ अपने तेवर में कम मुखर हैं, क्योंकि उनमें नारेबाजी फार्मूलेबाजी और फतवेबाजी नहीं है; लेकिन ज्यादा गहरे अर्थ में वे तीखी और राजनीतिक हैं। अपने समय के खुरदुरे चेहरे को देखते हुए वे तंज करते हुए कहते हैं–

''मैं कैसे कह दूँ
हरे भरे पेड़ों के तनों पर
कहीं नहीं मौजूद गोलियों के घाव?

मैं कैसे कह दूँ
चाँद–तारे आज भी बिखेर रहे हैं रोशनी
आकाश में अंधेरा कहीं नहीं है
और वक्त के नक्शे पर से
खून के छींटे गायब हैं पूरी तरह?

यह सब कुछ
आखिर मैं कैसे कह दूँ?'' (कैसे कह दूँ)

भय, भूख, बेरोजगारी, अनिश्चितता हमारे समय की तल्ख सच्चाई है, जिसके आज भी करोड़ों लोगों को प्रतिदिन दो–चार होना पड़ता है। ऐसे विकट माहौल में आदमी कैसे निश्चिन्त रह सकता है, जब रोज मंदी की मार से कल कारखाने दम तोड़ रहे हों और कर्मचारियों को अपनी नौकरी पर रोज खतरा मंडरा रहा हो, उनके वेतन–भत्तों में कटौती की जा रही हो और काम के घंटे बढ़ाए जा रहे हों। ऐसे ही अनिश्चितता भरे लम्हों में कवि कहता है–

''मैं महसूस करता हूँ / खाली ड्रमों की तरह / ढनमना रही यह जिंदगी
जिंदा लाश बनी है / या डोल रही है / पेंडुलम की तरह
हर सवेरा स्याह होता है / और शाम उदासी की एक और परत
दोपहर एक दलदल है / जहाँ डूब गया है हमारा सब कुछ
मसलन आजादी।'' (कारखाने से लौटने पर)

इस देश में फैले हर तरह के अंधेरे के लिए देश की राजनीति और राजनेता जिम्मेदार है। ये तमाम अंधेरों के पोषक हैं। इनकी सरपरस्ती में भय, भूख, भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार की विषबेल फल–फूल रही है। ये रोज नए–नए कारनामों से अपने कुकर्मों को सही साबित करने में लगे रहते हैं–

''अंधेरे से प्रतिबद्ध ये लोग / दुहाईयों के नाम पर / अपने ताज की असलियत
छिपा रखना चाहते हैं / नई–नई परिभाषाएँ गढ़कर / नकाबें बदलकर
नए–नए अंदाज से / अंधेरे की पहली या / दूसरी आजादी नाम देते हुए
अपने फन में इस कदर माहिर है कि / धोखा या धूर्तता
सारे देश में रोज करती है।'' (अँधेरे से प्रतिबद्ध लोग)

ऐसा नहीं है कि कवि निराशावादी हैं और हर जगह सिर्फ कमियाँ ही देखते हैं, लेकिन जब निराशा का माहौल हो, हर जगह विसंगतियों की चादरें फैली हों, तो इन कमियों पर बात करना भी बहुत जरूरी है। कौशल किशोर जी इस तमाम अंधेरी के छँटने की कामना करते हैं। उन्हें दृढ़ विश्वास है कि एक न एक दिन यह सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक जितने भी अँधेरे हैं, वे सब खत्म होंगे और देश एक नई सुबह के साथ आगे बढ़ेगा–

''आकाश सूरज और बादलों की / आँख मिचौली में मस्त रहेगा
हवाएँ अपने संग नमी लिये / पानी के छोटे–छोटे टुकड़े
बिखेर रही होगी / बूंदें फैल जाएँगी / जल प्लावित प्यासी धरती
पशुओं का रंभाना / पक्षियों का चहचहाना / और इस मधुर संगीत के साथ
लौटेगा जीवन

अपने कंधों पर / हल और जुआठे लिये / बैलों के साथ
खेतों की तरफ / गाते हुए किसान जा रहे होंगे / आशा और उम्मीद की
बेहतरीन फसलों का बीज बोने।'' (इस वक्त के बाद)

सत्ताएँ आम आदमी को हमेशा अज्ञानता की दीवारों में कैद रखना चाहती हैं और जनता भी धीरे–धीरे इस गुलामी की अभ्यस्त हो जाती है। कवि आम जनमानस को अपनी जिम्मेदारियों से विमुख होने पर अपनी नाराजगी जाहिर करते हैं। आम जनमानस की यह शुतुरमुर्गी प्रवृत्ति से ही समाज की यह दुर्दशा हुई है। कौशल किशोर कहते हैं–

''खोया हुआ गतिशील शहर
अमानवीय रिश्तों की रखैल है
इन रिश्तों के कई चेहरे हैं
हिटलर मुसोलिनी तोजी
शहर को सुलाये रखने की
कई–कई तरकीबें हैं इनके पास।'' (जागता शहर)

इसी बात को अपनी एक और कविता में दोहराते हुए कहते हैं–

''सरकार चाहती है कि / देश की जनता सोयी रहे
उसके पास सिर्फ अपनी नींद / और सपने हो / सपनों से वह खेलती रहे
एक के बाद दूसरे / दूसरे के बाद तीसरे / और इस तरह लगातार वह
सपनों में लोटती–पोटती रहे
सरकार ऐसा ही चाहती है।'' (सरकार चाहती है)

राजनीतिक लंपटता और उसके तिकड़मों ने हमेशा ही सत्ता का रखैल बनाकर रखा है। अब राजनीति सेवा नहीं, लूट का अड्डा और व्यापार बन चुकी है। आज की राजनीति धूर्त, मक्कार और जालसाज लोगों की आरामदेह और देश चारागाह में तब्दील हो चुके हैं। ऐसे हालात के लिए ही कवि कहते हैं–

''जो जितना बड़ा बादशाह
वह उतना बड़ा धूर्त
जो जितना बड़ा धूर्त
वह उतना बड़ा 'हितैषी'
इस लोकतंत्र में

इन्हें चुनने की
तुम्हें आजादी है
चुनो, अपने लिए चुनो।'' (तानाशाह शीर्षक से कुछ कविताएँ)

तानाशाह का एक और रूप देखिए और सोचिए कि आखिरकार हम कितने विकराल और कठिन समय में जीने को अभिशप्त हैं–

''वह जब देखता है
समूची दुनिया को
तोप की नली से देखता है

वह हरे भरे खेतों को देखता है
और खेत
युद्ध के मैदान में बदल जाते हैं
वह दिन को देखता है
वहाँ अँधेरे का सैलाब फैल जाता है
वह शहर को देखता है
वहाँ कर्फ्यू का सन्नाटा
या मौत का नगर बस जाता है
वह जीवन को देखता है
और देखते–देखते
लाशों का ढेर लग जाता है।'' (तानाशाह शीर्षक से कुछ कविताएँ)

राजनीतिक सत्ताएँ हमेशा ही आम जनता की विरोधी क्यों होती है?क्योंकि वे पूंजीपतियों, दलालों और मनुफाखोरों की तरफदार होती हैं। अमेरिकी साम्राज्यवाद ने पूरी दुनिया को अपनी धनलिप्सा की गिरफ्त में ले रखा है। खाड़ी देशों में हो रहा नरसंहार इसी का परिणाम है–

''सारी दुनिया के सीने पर सवार
जल्लादों का जल्लाद
खेलता है
तेल का खेल
पूंजी का खेल
लूट का खेल
तेल कार्टेल
बेफिक्र बेपरवाह बेलगाम
लोकतंत्र और शराफत का जामा ओढ़े
जंगली पागल हाथी की तरह मदमस्त
रौंदता जाता है
करोड़ों की जीवन–बेल।'' (एक मुट्ठी रेत)

आज विकास के नाम पर जल, जंगल और जमीन पूंजीपतियों के हाथों कौड़ी में मोल बेची जा रही है और वहाँ रहनेवाले किसान, आदिवासी लोगों को घर से बेघर किया जा रहा है। सब कुछ पूंजीपतियों को बेचकर सरकारें अपनी जेबें भर रही हैं और साथ ही पूंजीपतियों को मालामाल कर रही है। आखिरकार किसान, आदिवासी कहाँ जाएँ–

''आखिर क्यों दे अपनी उपजाऊ जमीन
कंपनियों को
कि वे आएँ
और बनाएँ चमचमाती सड़कें
माल और मल्टीप्लेक्स
सजे उनके बाजार
दौड़े उनकी गाड़ियाँ
भरे उनकी तिजोरियाँ
और वे खेलें खेल
खेल में खेल
उनके खेल के लिए
क्यों छोड़ें हम खेत
और लगा दे अपने भविष्य पर ताला।'' (टप्पल में...)

इस पूंजीवादी व्यवस्था के जरखरीद गुलाम लोकतंत्र के तथाकथित सेवकों ने हमारे सपनों, खेतों, खलिहानों को ही नहीं, हमारे भविष्य को भी पूंजीपतियों के हाथों गिरवी रख दिया है। ये सब हजम करके डकार तक नहीं ले रहे हैं और आम जनता पिसती जा रही है, उसकी सिसकियाँ सुननेवाला कोई नहीं है–

''हमारे इस परम लोकतंत्र में
जो हजम कर गये जानवरों का चारा
राजधानी के पाँच तारा होटल में
देर रात तक जाम से जाम टकराता रहा
लाल–नीली बत्तियों की खनखनाती रही हँसी
खबरों में उनकी डकार कहीं नहीं थी
वहाँ रामसेवक की सिसकियाँ भी नहीं थी।''

(रामसेवक की सिसकियाँ)

आज देश और दुनिया में लोकतंत्र के नाम पर बहुत अलोकतांत्रिक और अमानवीय क्रियाकलापों से दुनियाभर में आम जनमानस डर और आंशका का माहौल बना हुआ है। ये सब वे लोग कर रहे हैं, जिन्हें लोकतंत्र में आस्था ही नहीं है। इस अमानवीय व्यवस्था पर सवाल उठानेवाले हर जगह बंदूक का निशाना बन रहे हैं–

''स्वात घाटी हो
या खाप पंचायतें
यह दुनिया भरी है
उस पर गोली चलानेवालों से
कहाँ नहीं है
फतवा और फरमान जारी करनेवाले।'' (मलाला)

अमेरिकी साम्राज्यवाद आज पूरी दुनिया को अपनी दादागिरी से आक्रांत किये हुए हैं। अपने हितों के लिए वह किसी भी देश की गरदन अपने जूतों से रौंद सकता है। अफगानिस्तान, इराक आदि तमाम देश इसके चंगुल में फँसे कसमसा रहे हैं–

''वह धमकाता है
सारी दुनिया को धमकाता है
मन मस्तिष्क पर सवार
प्रेत छाया की तरह डोलता
निद्रा अर्धनिद्रा
सोते जागते
सपने में आता है
वहाँ भी धमकाता है
अपने पर बड़ा गुमान कि
वह जो करता है
लोकतंत्र के लिए करता है
कटोरा बाँटता है
जैसे भिखारी को रोटी के टुकड़े
वैसे ही फेंकता है।'' (जनता करे तो क्या करे)

इतनी सारी विसंगतियों, विडम्बनाओं निराशाओं के बीच भी कवि

की उम्मीद है कि एक न एक दिन आशा की किरणों से दमकेगा और पूरी दुनिया में छाया स्याह अंधियारा नेस्तनाबूद होगा। कवि उजाले के आगमन और अंधियारे के छँटने के लिए पूरी तरह से आशान्वित है। अपनी इन्हीं उम्मीदों को वे धार देते हुए कहते हैं–

''जानता हूँ /मैं नहीं बचूँगा /कुछ भी नहीं बचेगा /
नष्ट हो जाएगा मेरा रेशा–रेशा /अस्तित्वहीन हो जाऊँगा
पर किसी खुशफहमी में नहीं रहना /तुम भी नहीं बचोगे साबुत
मिटते मिटते भी /मैं छोड़ जाऊँगा /तुम्हारे सीने पर अपना निशान
रक्तबीज हैं हम /फिर–फिर लौटेंगे /स्पार्टकस बनकर
वे धारियाँ जो हमने बनाई हैं
गहराती जाएँगी दिन दिन।'' (पत्थर और रस्सी)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कौशल किशोर अपनी कविताओं के माध्यम से राजनीति की विसंगतियों, विडंबनाओं और उसकी अमानवीय व्यवस्थाओं के खिलाफ मशाल की तरह अपनी कविताओं को समाज के सामने रखते हैं और अपनी भरपूर कोशिश, जिजीविषा, ईमानदारी, समझदारी और पक्षधरता के साथ आम जनमानस के साथ खड़े होते हैं। उनकी कविताएँ राजनीति की विद्रूपताओं, उसकी चालाकियों, तिकड़मों और धूर्तताओं को आम जनमानस के सामने बेपर्दा करती हैं। उनकी कविताएँ आम जनमानस को अपने हकों, अधिकारों के लिए उठ खड़े होने को प्रेरित करती हैं। कौशल किशोर की कविताएँ अपनी सामाजिक और राजनीतिक भूमिका का निर्वहण पूरी तरह सफलता से करती हैं।

कविताएँ :

डॉ संजय कुमार सिंह,
पूर्णिया महिला कॉलेज, पूर्णिया
मो.–9431867283

1. सालमारी उवाच

मैं सालमारी हूँ
प्रकृति की उपत्यका में बसा
एक छोटा सा कस्बानुमा शहर
कोई आए और मुझे भी देखे
सहज और निश्च्छल माहौल
हरी–भरी धरती
फसल लहराते खेत और बाग–बगीचे
काम के लायक बाजार
जरूरती की चीजें खरीदते लोग
शक्कर, सब्जी, मांस–मछली..
कपड़े–लत्ते, जूते चप्पल।
वहीं बगल में
जूते सीते मोची, छाता बनाते कारसाज
कचिया, खुरपी, फुकनी से लेकर बाथी तक
गुलाबगट्टे और हवा मिठाई भी
आपस में दुआ–सलाम भी
स्मृति में नहीं, यथार्थ में सब कुछ
यहाँ यूज एंड थ्रो वाला बाजारवाद नहीं
और न ही वैसी अजनबीयत से भरी गहमागहमी
मैं सालमारी हूँ कहने के लिए शहर भी
पर एक मुकम्मल गाँव
एक आत्मा गाँव की देश में।

प्यारी पृथ्वी

यह मैं क्या सुन रहा हूँ
किसकी आवाज है यह
दिल और दिमाग की चीरती हुई
इतिहास स्मृति और हमारे आत्मकथ्य को
रौंदती हुई, सनसनाती हुई संवेदना और विचार में
यहाँ से सारे जहाँ तक
किसकी डुगडुगी है यह
अखंड नाद सी गूँजती हुई
दूध सी हँसी, मिश्री घुली खुशी
खुशबू फूलों की,रवानी नदियों सी
तुम जो चाहो सो लो
हौल मार्का प्रेम के साथ
यह आफर है विडियो में, विज्ञापन में
वह भी कम समय के लिए
ऑनलाइन एडवांस बुकिंग
बिलिंग के साथ पक्की गारंटी अब
ताजमहल और रंगमहल की छाया के लिए शहर–शहर
कविता–कहानी की काया में इधर–उधर
गली–कूचे, स्कूल–कॉलेज में कहीं
कस्तूरी मिरग सा जंगल–जंगल
प्रेम के लिए किसी को भटकना नहीं है
पार्श्व में मधुबनी पेंटिंग्स की लोक–लुभावन
लोक–संस्कृति के अलभ्य
कलात्मक उपादानों की चमक–दमक
तुम्हारे बेडरूम में
इतना ही नहीं
आसमान का नीलापन
सागर की गहराई
पहाड़ की ऊँचाई
पेड़ पौधों की हरियाली
और
पक्षी की उन्मुक्त उड़ान..
यानी महाभाव की अनुभूति
एक साथ फ्री में एक साल तक
अब तुम वह सब छोड़ो
तुम्हारी अंतहीन आकांक्षाओं के लिए
तुम्हारा विश्वसनीय बाजार
तुम्हारे दिल के दरवाजे पर
दस्तक दे रहा है अपने महान आयोजन में
पूँजी के अजेय पंजे से
भव्य आकर्षण का यह इंद्रजाल
अमरलत्ते सा फैल–पसर रहा है
तुम्हारी देह से लेकर आत्मा तक
सवाल पैसे का नहीं है
डेविट कार्ड, क्रेडिट कार्ड
और न जाने कितने कार्ड्स
और एप्स
अपने बहुरूपीय
और बहु विकल्पीय प्रकल्प में
यह रास्ता भी वही देगा
कि तुम जो गिरवी रखो
रखो झटपट
कुछ भी सोचो मत
रुको नहीं एक पल
यहाँ सिर्फ 'डाइमंड लुक में' वर्तमान है
कोई धुँधला भविष्य नहीं
और न अतीत का मटमैला अवसाद
अभी रजिस्ट्रेशन फी मात्र
एक साल तक केवल सूद
मूल बाद में, वह भी किश्त में
पर अदृश्य आशंकाओं से
घिरी यह पृथ्वी
हिल रही है
इस तरह प्रेम बचे या नहीं
मगर नहीं बचेगी
तुम्हारी प्यारी पृथ्वी
जिसकी संपूर्ण संभावनाओं का सौदा
ईश्वर बनकर
बदले भेष में
तुमसे ही घुलमिलकर
कर रहा है यह महाबली बाजार
जिसे कोई कटप्पा मार नहीं सकता।

आलेख

प्रेमचंद : हम दो हमारे दो

कमल किशोर गोयनका
अशोक विहार, दिल्ली
मो0 9811052469

भारत में जनसंख्या विस्फोट को देखते हुए जनसंख्या को नियंत्रित तथा सीमित करने की चर्चा होती रही है, लेकिन जनसंख्या नियंत्रण कानून बनाने पर किसी सरकार ने चिंता नहीं की। हमारे लोकतंत्र में वोट की राजनीति ने भी इसमें बाधा पैदा की, लेकिन इधर असम और उत्तरप्रदेश की सरकारों ने जनसंख्या नियंत्रण कानून बनाने की घोषणा की है। असम में अवैध घुसपैठियों का दबाव बढ़ रहा है और उत्तरप्रदेश में तो लगभग 23 करोड़ जनसंख्या है और 1.47 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। अब जनता की यह भी माँग है कि केंद्रीय सरकार को पूरे देश के लिए जनसंख्या नियंत्रण कानून बनाना चाहिए, क्योंकि देश की जनसंख्या अब 135 करोड़ हो गयी है।

भारत में जनसंख्या की निरंतर वृद्धि की समस्या आज के भारत ही नहीं है, बल्कि पराधीन भारत में जिस समय जनसंख्या केवल 30–32 करोड़ थी, तब हमें पहली बार देश के लेखकों में यह चिंता दिखाई देती है। इन लेखकों में भी केवल हमें प्रेमचंद दिखाई देते हैं और शायद भारतीय भाषाओं में वे अकेले ऐसा लेखक हैं, जो देश के स्वस्थ एवं संतुलित विकास तथा आनंदमय जीवन के लिए जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि के लिए एक आधुनिक जनसंख्या–दर्शन देते हैं और अपने लेखों, कथा, उपन्यास, कहानी में उसे स्वरूप देते हैं। प्रेमचंद 'हंस' पत्रिका के मई, 1934 के अंक में लिखते हैं–''उस युग (प्राचीन युग) में आबादी की जरूरत थी और रोटी का प्रश्न इतना जटिल न थ। अब जमाना बदल रहा है और संसार में जरूरत से ज्यादा आदमी हो गये हैं। इसके साथ ही बच्चों के पालन–पोषण का भार भी बढ़ गया है। हम अपने बालकों को पुष्टिकारक भोजन और अच्छी शिक्षा देना चाहते हैं। साधारण वित्त के आदमी को अगर सात–आठ लड़कों–लड़कियों का खर्च उठाना पड़े, तो समझ लो कि उसकी और उसके बच्चों की शामत है। अपनी भी साँसत और बच्चों की भी साँसत। इसी जरूरत ने 'संतान–निग्रह' को जन्म दिया।'' प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'रंगभूमि' (1925) में भी लिखा है कि हमारी जन्मभूमि संतान वृद्धि के भार तो अब नहीं सँभाल सकती और अब सड़क, गली में बालक ही बालक दिखाई देते हैं। इसी प्रकार प्रेमचंद ने 4 दिसम्बर, 1930 को जैनेन्द्र कुमार को उनकी पहली संतान होने पर बधाई देते हुए लिखा था कि मैं तो पुराने ख्याल का आदमी हूँ। दो पुत्रों तक तो बधाई दूँगा, इसके बाद जरा सोचूँगा। प्रेमचंद पुराने ख्याल के होकर भी नये जमाने की बात कह रहे थे और देखिये कि भारत का यह जमाना न अपने लाभ की बात समझने को तैयार है, न देश के भले की बात।

प्रेमचंद ने जब जनसंख्या के नियंत्रण तथा परिवार में दो बच्चों तक सीमित रखने की बात तब कही थी, जब भारत का विभाजन नहीं हुआ था और समग्र भारत की जनसंख्या केवल 30–32 करोड़ ही थी। प्रेमचंद अपने समय के और उसके बाद भी वे ऐसे अकेले हिन्दी लेखक हैं, जो अपनी रचनाओं के द्वारा जनसंख्या के नियंत्रण के लिए आधुनिक दर्शन देते हैं और समस्या एवं उसके समाधान का आधुनिक उपाय बताते हैं।

स्त्री बच्चे पैदा करने की मशीन :

प्रेमचंद परिवार में स्त्री की दुर्दशा और विवशता की चर्चा करते हैं कि वह पुरुष की विलासिता के कारण बार–बार गर्भ धारण करती है और वह बच्चे पैदा करने की मशीन बना दी गई है। उनकी कहानी 'कानूनी कुमार' में कथानायक ऐसे पुरुषों को नरहत्या के अपराध में दंडित करने को कहता है। वह कहानी में कहता है–''इस समाज, इस देश का और इस जीवन का सत्यानाश हो, जहाँ रमणियों को केवल बच्चा जनने की मशीन समझा जाता है। इस बेचारी को जीवन का क्या सुख? कितनी ही ऐसी बहनें इसी जंजाल में फँसकर 30–35 वर्ष की अवस्था में, जबकि वास्तव में जीवन को सुखी होना चाहिए, रुग्ण होकर संसार–यात्रा समाप्त कर देती हैं। हा भारत! यह विपत्ति तेरे सिर से कब टलेगी?'' प्रेमचंद इसके बाद ऐसे पुरुषों को दंडित करने का विधान करते हुए लिखते हैं–''संसार में ऐसे–ऐसे पाषाण हृदय मनुष्य पड़े हुए हैं, जिन्हें इन दुखियारियों पर जरा भी दया नहीं आती। ऐसे अंधे, ऐसे पाषाण, ऐसे पाखंडी समाज को, जो स्त्री को अपनी वासनाओं की वेदी पर बलिदान करता है, कानून के सिवा और किसी विधि से सचेत किया जाए? और कोई उपाय नहीं है। नरहत्या का जो दंड है, वही दंड ऐसे मनुष्यों को मिलना चाहिए। मुबारक होगा, वह दिन, जब भारत में इस नाशिनी प्रथा का अंत हो जाएगा–स्त्री का भरण, बच्चों का मरण और जिस समाज का जीवन ऐसी संतानों पर आधारित हो, उसका मरण। ऐसे बदमाशों को क्यों न दंड दिया जाए। असेंबली खुलते ही यह बिल पेश करूँगा। प्रलय हो जाएगी, यह जानता हूँ, पर और उपाय ही क्या है? दो बच्चे से ज्यादा जिसके हो, उसे कम से कम पाँच वर्ष की कैद, उसमें पाँच महीने से कम काल कोठरी न हो। जिसकी आमदनी सौ रुपये से कम हो, उसे संतानोत्पत्ति का अधिकार न हो। हाँ, एक दफा यह भी रहे कि एक संतान के बाद कम–से–कम सात वर्ष तक दूसरी संतान न आने पावे।'' यह दंड विधान एक लेखक प्रस्तावित कर रहा है, राजनेता नहीं, जिसकी दृष्टि सबके कल्याण पर है।

परिवार नियोजन के साधन :

प्रेमचंद दो प्रकार के साधनों की चर्चा करते हैं–एक स्वाभाविक साधन और दूसरा कृत्रिम साधन। प्रेमचंद ने 'हंस' नवम्बर, 1932 में संतान–निग्रह पर लेख लिखा कि स्वाभाविक साधन को विशेष महत्त्व दिया, पर वे इतने आधुनिक थे कि उन्होंने कृत्रिम साधन का भी समर्थन किया। प्रेमचंद ने लिखा कि ब्रह्मचर्य का महत्त्व हिन्दू शास्त्रकारों ने समझा था, लेकिन इसका उद्देश्य संतान–निग्रह नहीं बल–बुद्धि की रक्षा थी। प्रेमचंद गाँधी के ब्रह्मचर्य और संयम के समर्थक थे, लेकिन उन्होंने परिवार में संतानोत्पत्ति को रोकने के कृत्रिम साधनों का भी समर्थन किया। उन्होंने लिखा–''इसमें तो किसी को आपत्ति नहीं है कि संतान– निग्रह आवश्यक वस्तु है। मतभेद इसी में है कि वह उद्देश्य ब्रह्मचर्य द्वारा पूरा किया जाए या कृत्रिम साधनों से। अगर ब्रह्मचर्य हो सके तो सबसे उत्तम, लेकिन वह न हो सके तो हम कृत्रिम साधनों को भी बुरा नहीं समझते।'' इस संबंध में वे उस अंधविश्वास का भी उत्तर देते हैं कि ईश्वर के विधान में बाधा डालने के भीषण परिणाम होंगे। वे कहते हैं कि प्रकृति पर विजय प्राप्त करना ही मानव संस्कृति का लक्ष्य है, लेकिन उनकी बस यह चिंता है कि कृत्रिम उपायों से मनुष्य में अवैध रूप से भोग–विलास में न पड़ जाए और यदि ऐसा हुआ तो यह आशीर्वाद तब श्राप में बदल जाएगा।

संतानोत्पत्ति का सीमित अधिकार :

प्रेमचंद जनसंख्या को सीमित करने तथा सुयोग्य, शिक्षित एवं सक्षम संतान उत्पन्न करने के लिए कुछ वर्गों को संतानोत्पत्ति के अधिकार को

नियंत्रित करना चाहते हैं, जो आज किसी के लिए कहना भी संभव नहीं है। प्रेमचंद 'हंस' नवम्बर, 1933 में प्रयाग में हुए प्रांतीय महिला सम्मेलन में स्वीकृत संतान–निग्रह के प्रस्ताव का उल्लेख करते हैं और उसके समर्थन के साथ युजिनेक शास्त्र के इस मत को उद्धृत करते हैं कि देश में अयोग्य स्त्री–पुरुषों को न्यूटरलाइज अर्थात् जननशक्ति से वंचित कर देना चहिए और देश में संतानोत्पत्ति का अधिकार केवल दिल, दिमाग और देह से मजबूत लोगों को ही होना चाहिए। अत: देश में जो विद्वान, प्रतिभाशाली, तेजस्वी स्त्री–पुरुष हैं, उन्हीं पर देश में योग्य संतान पैदा करने की जिम्मेदारी आती है। प्रेमचंद आगे लिखते हैं कि पढ़ी–लिखी, विचारशील देवियाँ और उन्नत विचार वाले पुरुष संतान–निग्रह नहीं कर सकते और न राष्ट्र उन्हें इससे आजाद कर सकता है। उन्हें तो संतान उत्पन्न करके इस कर्तव्य का पालन करना होगा, अन्यथा देश में अयोग्य संतान मर जाएँगी। यह प्रेमचंद का अतिवादी दृष्टिकोण है, जो न प्राकृतिक है, न संभव, पर इससे हमें एक स्वस्थ देश की रचना के लिए उनकी चिंता ही समझनी चाहिए।

हम दो हमारे दो :

प्रेमचंद सन् 1929 में आज के भारत के बार में सोच रहे थे और एक लेखक के रूप में यह आवश्यक था कि वह अपने वर्तमान के साथ भविष्य को भी देखे। आज सरकारें परिवार में दो बच्चे तक जन्म देने के लिए कानून बना रही हैं और प्रेमचंद की कहानी 'कानूनी कुमार' (1929) में इसके लिए कानून बनाने का प्रस्ताव करते हैं और कहानी में कथानायक कहता है–''दो बच्चों से ज्यादा जिसके हों, उसे कम से कम पाँच वर्ष की कैद, उसमें पाँच महीने से कम कालकोठरी न हो।'' आज ऐसा दंड देना तो लोकतंत्र में संभव नहीं है और न दिया जाना चाहिए; परन्तु इससे प्रेमचंद की चिंता समझी जा सकती है। प्रेमचंद अपनी दूसरी कहानी 'गमी' (31 अगस्त, 1929) में तो दो बच्चे के लक्ष्य को ही लक्ष्य मानते हुए कहानी की रचना करते हैं।

इस महानी में तीसरे बच्चे का जन्म 'गमी' है, मौत है और जीवन के आनंद नष्ट करनेवाला है। कहानी का कथानायक कहता है–''एक बालक का जन्म हुआ, पर मैं इसे आनंद का विषय नहीं, शोक की बात समझता हूँ। आपलोग जानते हैं कि मेरे दो बालक मौजूद हैं। उन्हीं का पालन मैं अच्छी तरह नहीं कर सकता। दूध भी कभी नहीं पिला सकता, फिर इस तीसरे बालक के जन्म पर मैं आनंद कैसे मनाऊँ? मैं इसे विपत्ति समझता हूँ और इसीलिए इस जन्म को गमी कहता हूँ।'' इसके बाद कथानायक गंगाजल हाथ में लेकर प्रतिज्ञा करता है कि वह अब ऐसी महान मूर्खता फिर न करेगा।

इस प्रकार प्रेमचंद 30 करोड़ की जनसंख्यावाले अविभाजित भारत के 'दो हम दो हमारे' का आदर्श रखते हैं और उसे परिवार, समाज तथा देश के स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक मानते हैं और आज हमारी जनसंख्या के 135 करोड़ होने पर भी यदि सरकारें जनसंख्या कानून ला रही है, तो उसका सर्वत्र स्वागत होना चाहिए। प्रेमचंद समझते थे कि इसके लिए कानून बनाना होगा और तीसरे बच्चे के पैदा करने पर दंडित करना होगा, पर सरकारें कुछ दूसरे प्रकार के प्रतिबंध लगाकर कानून ला रही है, जो लोकतांत्रिक है। प्रेमचंद जनसंख्या के सीमित होने पर देश कैसा होगा, उसका चित्रण करते हुए 'कानूनी कुमार' कहानी में लिखते हैं–''तब उस देश में सुख और संतोष का साम्राज्य होगा, तब स्त्रियों और बच्चों के मुँह पर खून की सुर्खी नजर आएगी, तब मजबूत हाथ–पाँव और मजबूत दिल–जिगर के पुरुष उत्पन्न होंगे।'' यदि हम प्रेमचंद के ऐसे भारत को चाहते हैं और मैं समझता हूँ, हर भारतीय को ऐसा ही रहना चाहिए, तो हमें 'हम दो हमारे दो' की नीति और कानून का स्वागत करना चाहिए।

लघुकथा

नीना सिन्हा
पटना
मो.–6290273367

पान

रिक्शे से उतरकर बड़े बस अड्डे पर गन्तव्य के लिए बस का इंतजार कर रहा था। किसी ने पुकारा–''पान खाएँगे क्या साहेब?''

मोबाइल से नजरें उठाई तो एक नौ–दस साल का लड़का एक दूधमुँही बालिका को पीठ पर लादे, चलती–फिरती पान की स्टाल गले में लटकाए खड़ा था।

''पान नहीं खाता'' अनमने भाव से मैंने कहा।

''बोहनी नहीं हुई साहेब! मीठा पान ही ले लें।''

''परेशान न करो।''

''बहन के दूध के लिए, साहेब! अपनी चिंता नहीं करता।''

''झूठी सच्ची कहानियाँ मत सुनाओ।''

तभी उसे पान के लिए किसी ने बुलाया। अपनी उपेक्षा नजरअंदाज कर जाते–जाते कह गया–''बस स्टैंड के पनवारी अंकल से लेकर यात्रियों को चलते–फिरते पान बेचता हूँ। उधर उनकी दुकान है।''

बस में वक्त था और मन जिज्ञासु। बैग लटकाया, पनवाड़ी की दुकान से सौंफ–चॉकलेट खरीदकर, बच्चे के बारे में पूछताछ की।

''खाते–पीते परिवार का बच्चा था साहेब! कोरोना माता–पिता को लील गया। पिता के पास के महल्ले के मिलनसार व्यक्ति थे। रोज एक पान लगवाकर ऑफिस के लिए इसी स्टैंड से बस लेते थे। एक दिन इसे यहाँ रोता देखा। पूछने पर पता चला कि ताऊ ने घर से निकाल दिया है। तबसे यहीं व्यस्त रखता हूँ। इतना कमा लेता है कि रोटी और बहन के दूध का जुगाड़ हो जाए।'' स्वर में पीड़ा थी।

''ऐसे ताऊ की बैंड बजानी चाहिए थी'' मैंने कहा।

''खतम आदमी है साहब! बड़ा ही बदजुबान। परिवार जन भी डरते हैं। बड़ा होकर यह स्वयं हिसाब माँगेगा। यह दत्तक पुत्र था और बच्ची अपनी संतान, जो वर्षों बाद आई थी। माता–पिता ने फर्क नहीं किया। तभी अपनी रोटी के पहले बहन के लिए दूध की चिंता करता है।''

कथाकार हूँ–''लिखता कि ...गोद लेने का फैसला किया।'' वाहवाही के लिए लिखना आसान है, पर अंजाम देना लगभग असंभव।

बस चल पड़ी थी। कुछ देर पुलसिया, पत्रकार, स्वयंसेवी संस्थावाले मित्रों को फोन करने में व्यस्त रहा। पनवारी का नंबर ले लिया था, कोई व्यवस्था बन पड़े तो सूचित कर सकूँ।

''अपना हक लेने के लिए उसे युवा होने का इंतजार करना पड़ेगा। सृष्टिकर्ता, सबका हिसाब रख रहा होता है, खासकर कंस जैसे चाचाओं एवं मामाओं का। कुछ सोचा ही होगा उसने।'' बस पर बैठा मैं विचारों में गुम था।

आलेख

नारी चेतना का अस्तित्व

चंद्रकांता अग्निहोत्री
404, सेक्टर 6
पंचकूला–134109
मो0–7973833595

हम जिस समाज में रहते हैं, उस समाज की धारा किधर प्रवाहित हो रही है, कितनी उन्नति के शिखरों को छू रही है और उस समाज की सभ्यता और संस्कृति किस सीमा तक विकसित हुई है। इन सब बातों का पता केवल इस बात से चलता है कि उस समाज की स्त्रियाँ कितनी शिक्षित और हर प्रकार से कितनी समृद्ध हैं और समाज का दृष्टिकोण स्त्रियों के प्रति कैसा है?

हमारा समाज पुरुष सत्तात्मक समाज है और इस समाज में स्त्रियों की दशा चिंतनीय हो रही है। अगर हम वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति का अवलोकन करें, तो हमें ज्ञात होगा कि उस समय स्त्रियों की दशा सामान्यतया आज की दशा से बेहतर थी। उस समय स्त्रियों को स्वतंत्रता तो प्राप्त थी, पर पूर्णरूपेण नहीं। वे किसी भी विषय पर किसी से भी वाद–विवाद कर सकती थी। जैसे मंडन मिश्र की पत्नी 'भारती' ने आदि शंकराचार्य से 'काम' जैसे विषय पर वाद–विवाद किया था। किसी भी सभा में उनका आना–जाना वर्जित नहीं था। पुरुषों और स्त्रियों को लगभग समान अधिकार प्राप्त थे। यद्यपि व्यक्तिगत रूप से कोई निर्णय नहीं ले सकती थीं। वे शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं और यज्ञ आदि कार्यों में पुरुषों की भाँति समान रूप से सम्मिलित हो सकती थीं।

तब कहा जाता था–'जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है, उस कुल में दिव्य गुण, दिव्य भोग व उत्तम संतान होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती है, वहाँ जानो, उनकी सब क्रिया निष्फल है।''

यद्यपि वह समय बेहतर था, फिर भी उस समय देवदासियाँ को मंदिरों में पुरुषों की हर प्रकार की सेवा के लिए रखा जाता था। पुरुषों ने उस समय भी अपने लिए पूर्ण प्रबंध किये हुए थे, फिर भी स्त्री को सम्मान दिया जाता था। जाबाला का उदाहरण ही लीजिए, निस्संदेह उसके पुत्र सत्यकाम को ऋषि की उपाधि दी गई। जाबाला के लिए भी जो करुण भाव थे, वे इसलिए कि उसने सत्य बोला, क्योंकि वह नहीं जानती थी कि सत्यकाम किसका पुत्र है, वह देवदासी जो थी और कई पुरुषों के संपर्क में आयी थी, लेकिन इस तरह के प्रसंगों से यह सिद्ध नहीं होता कि स्त्री वैदिक काल में भी पूर्ण रूप से स्वतंत्र थी।

कालांतर में स्त्रियों की स्थिति वैदिक युग की भाँति नहीं रही। वैसे भी अच्छी बातें हम भूल जाते हैं। हमारी स्मृति बहुत क्षीण है। हम भूल गये उन थोड़े–बहुत मानवीय मूल्यों को भी। इसलिए हमारी सोच नहीं बदली। कारण कुछ भी हो, चाहे राजनीतिक हों या सामाजिक। हम परिस्थितियों को दोष नहीं दे सकते। वास्तव में मनुष्य कहलाने का अधिकारी तो वह है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी साहस और आत्मबल का त्याग न करे।

उस समय रियासतों के राजा मिलजुलकर नहीं रहते थे। उनकी पारस्परिक फूट ने विदेशियों को हमारे देश पर आक्रमण करने के लिए ललकारा। अपने ही देश में जो युद्ध हुए, उनका उत्तरदायित्व स्त्रियों का तो नहीं?एक बात और...विदेशियों ने हम पर राज किया, वह हमें स्वीकार था; लेकिन अपने ही देश में मिल जुलकर रहना हमें बिल्कुल स्वीकार नहीं था। पुरुषों ने भी इन सब स्थितियों के परिणाम झेले होंगे; लेकिन स्त्रियों ने सबसे अधिक दुष्परिणाम को झेला। वह घर में कैद होकर रह गयी, उसे घूंघट में रहना पड़ा, इतना ही नहीं, उसे गहनों से लादकर स्वप्न सुंदरी बनाकर समाज में, रिश्तों में प्रस्तुत कर दिया गया। उन्हें शिक्षित नहीं किया गया था, उन्हें घर से बाहर निकलने की आज्ञा भी नहीं थी। कुछ पीढ़ियों ने तो घर में रहकर घुट–घुटकर मरना ही सीखा था। लेकिन ऐसा हुआ क्यों?क्योंकि हमने कोई प्रयास नहीं किये। आधे समाज को हमने अपंग बना दिया।

अगर प्रयास किया जाता तो स्त्रियों को बचाया जा सकता था। उसे शिक्षित करते, उसे शस्त्र–विद्या सिखाते, उसका आत्मबल जगाते, ताकि वह अपनी रक्षा स्वयं कर सकती। आश्चर्य की बात तो यह है कि वह समझ ही नहीं पाई कि उसके साथ कितना बड़ा छल हो रहा है, उसके अस्तित्व को समाप्त किया जा रहा है, उसे एक वस्तु मात्र समझा जा रहा है। यहाँ तक कि वह अपने अधिकार के लिए आवाज भी नहीं उठा सकती थी; यहाँ तक कि अपने पति को प्रसन्न करने के लिए अपने कंधों का सहारा देकर उसे वेश्या के घर तक भी ले जाने में किंचित् भी अपमान का अनुभव नहीं होता था, अपितु वह गौरवान्वित होती थी। कारण वह अपने अधिकारों के प्रति बिल्कुल जागरुक नहीं थी। ऐसे समय में अगर वह आवाज उठाती, तो भी उसे प्रताड़ित ही किया जाता। उसके लिए उसका पति ही सर्वोपरि था, फिर चाहे वह उसे मारे या पीटे, उसे किसी तरह से अपमानित करे या उसे अपने घर के किसी कोने में एक वस्तु की तरह से पड़ा रहने दे। यह उसका ही निर्णय होता कि वह जब चाहता एक वस्तु की तरह उपयोग करता। नहीं चाहता तो उसे पूछता भी नहीं; लेकिन स्त्री कभी इसके विरुद्ध आवाज नहीं उठा सकी। धीरे–धीरे समाज इस ढाँचे में ढलता चला गया, परिणामस्वरूप स्त्रियों ने इसे स्वीकार कर लिया।

अरस्तू कहते हैं–''औरत कुछ गुणवत्ताओं की कमी के कारण ही औरत बनती है। वह एक प्रासंगिक जीव है। वह आदम की एक अतिरिक्त हड्डी से निर्मित है।'' ऐसी बातें किस स्त्री के मन में आक्रोश पैदा न करती होंगी; लेकिन पुरुष का वर्चस्व वैसे ही कायम रहा। पुरुष ने अपनी सुविधाओं का पूर्ववत् ध्यान रखा। तुलसीदासजी ने भी लिखा–उसे स्वतंत्र करना निषेध होना चाहिए। 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी। वे यह भी कहते हैं–'जिमि सुतंत्र हुई बिगरहिं नारी।' आदि–आदि

स्त्री को नर्क का द्वार भी कहा गया। किसने कहा?हमारे साधु–संतों ने। साधु–संतों ने उसे साँप–बिच्छू से भी अधिक खतरनाक समझा। अगर वह पैर भी छू ले तो उन्हें पश्चाताप करना पड़ता है और मजा यह है कि ये सब स्त्री से ही पैदा होते हैं। इनका खून स्त्री का, इनकी हड्डी स्त्री की, इनके जीवन की सारी ऊर्जा स्त्री से आती। वह स्त्री नर्क का द्वार हो जाती है। इसलिए जबतक स्त्री के साथ असम्मानपूर्ण और मूढ़तापूर्ण व्यवहार होगा, तबतक मनुष्य जाति का ऊर्ध्वगमन नहीं हो सकता। स्त्री गुलामी से छूट नहीं पायी। इसमें दोष स्त्री का नहीं, बल्कि पुरुष का है।

यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण था कि मुगलों ने हमारे देश पर शासन किया। इसके बाद की कहानी तो सबको पता है, स्त्रियों ने जौहर भी किए और वे सती भी हुई। उसकी खोपड़ी में ऐसे विचार भरे कि वह सती होने को राजी हो गयी, जौहर करने को राजी हुई। मुझे याद आता है एक प्रसंग, जब पद्मावती फिल्म का निर्माण हुआ, कितना शोर मचा था, क्यों?क्योंकि एक रानी सबके सामने कैसे नृत्य कर सकी है?मान ली यह बात। घूंघट के बिना कैसे किसी के सामने आ सकती है?पर जलकर तो मर सकती है। समस्या तो पुरुषों के मन को लेकर है, लेकिन घूँघट स्त्री निकाले। तोड़फोड़ में लगाई, यही शक्ति नारी उत्थान में लगाई होती तो आज बात कुछ और होती।

एक बात जो आजतक समझ नहीं आयी, वह यह कि पद्मावती को इतना सम्मान क्यों दिया गया?इसलिए कि वह जौहर में जलकर राख हो गयी। विचारणीय बात तो यह है कि उसे जलकर राख क्यों होना पड़ा?क्यों?पुरुषों के कारण। पुरुष ही पुरुषों से स्त्रियों को नहीं बचा सके, इसलिए स्त्रियाँ जल मरीं। हमारी उदारता तो देखिए कि इस तरह जो जल मरे और दूसरों को भी प्रोत्साहित करे, उन्हें हम सम्मान देते हैं।

फिर अंग्रजों ने हमारे देश पर शासन किया, लेकिन अंग्रेज इस बात

से आश्चर्यचकित थे कि किस प्रकार कोई किसी को जीते जी अग्नि में ढकेल सकता है और उसे मरने के लिए, जलने के लिए बाध्य कर सकता है। इस बात को तो विदेशी भी स्वीकार नहीं कर पाये थे। इसलिए उन्होंने भी सतीप्रथा का विरोध किया। लेकिन इस देश की स्त्रियों के भाइयों, पतियों और पिताओं को कभी हैरानी नहीं हुई। अंग्रेज वायसराय लार्ड विलियम ने भारत में सतीप्रथा पर रोक लगाने का कानून लागू किया। यह सब हमारे समाज पर कलंक नहीं तो और क्या था?

ऐसा अपराध जिसकी न कभी सुनवाई हुई, न किसी को दंड मिला। महिलाओं के खिलाफ अन्याय को बढ़ावा देनेवाली इस प्रथा का अंत 4 दिसम्बर 1829 को हुआ। तभी राजाराम मोहन राय भी आगे आये और समाज में अनेक परिवर्तन हुए, लेकिन फिर भी धारणा नहीं बदली। समाज में स्त्रियाँ तो शोषित होती ही रहीं। सदियों से पुरुष सत्तात्मक समाज के अत्याचार को झेलती नारी के हृदय में आज भी वे सभी घाव जिंदा हैं, जो उसे याद दिलाते हैं उसके खोए हुए अस्तित्व की। यह मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि अगर किसी अदालत में औरत पर किये गये अत्याचारों की सुनवाई हुई तो कटघरे में खड़े पुरुष के लिए कोई भी सजा कम पड़ेगी।

सच तो यह है कि नारी न कभी वस्तु थी, न रही और न होगी। उसकी ममता और उसके प्रेम ने हमेशा समाज को अपनी छत्रछाया में रखा। चाहे उसके पास कुछ भी न था। एक माँ के रूप में स्त्री ने सदा पुरुष को अपनी ममता और वात्सल्य से सींचा। उसने हिम्मत नहीं हारी, चाहे वह घुटकर मरती रही। आँसू बहाती रही, एक वस्तु की तरह उपयोग में लायी जाती रही, फिर भी वह मरी नहीं।

ऐसा लगता था मानो कितने ही युग बीत गये हों, स्त्री को इस अंधकार में अपना जीवन को बिताते हुए। समय बदला, नारी के प्रति जो दृष्टिकोण था, उसे बदलने का भरपूर प्रयास किया गया। यहाँ तक कि साहित्य के क्षेत्र में कई कवि आगे आए और उन्होंने नारी जीवन को जैसे अपने भीतर जीकर देखा हो। मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' में पहले ही स्पष्ट किया था।

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।''

तत्पश्चात् कुछ ऐसे भी साहित्यकार आये, जिन्होंने नारी जाति के उत्थान पर बल दिया। जयशंकर प्रसादजी ने अपने महाकाव्य 'कामायनी' में लिखा है–'मुक्त करो नारी को चिरवंदिनी नारी को।' गुप्तजी ने भी स्त्रियों के पक्ष में पंचवटी में कहा है–

''नर तो शास्त्रों का बंधन, सब ही है नारी को लेकर
अपने लिए सभी सुविधाएँ पहले ही कर बैठे नर।''

इतना सब होने, सुनने व भोगने के बाद उसकी आत्मा चीत्कार कर उठी। उसकी आवाज एक बीज की तरह धरती माता के गर्भ में दबी रही, जो आज समय आने पर धरती का सीना चीर अंकुरित और पल्लवित हुई है।

काली अंधेरी रात के बाद जब नारी को उगते हुए सूरज की किरणों ने छुआ, तो उसमें नवजीवन का संचार हुआ। उसने भी देखा खुला–आकाश, सुंदर धरती उसके हृदय में भी भाव सुमन खिलने लगे और एहसास अंगड़ाई लेने लगे। उसने भी जीना चाहा। पहली बार सोचा होगा कि वह वस्तु नहीं है, वह एक जीती जागती ममता की, वात्सल्य की व प्रेम की मूर्ति है, जिसमें प्राण हैं। जो आवाज उठा सकती है, जो अपने अधिकारों को समझ सकती है। इसलिए उसे बहुत संघर्ष करना पड़ा। सदियों से चले आते हुए रीति–रिवाजों के प्रति आवाज उठानी पड़ी। झूठी परंपराओं की बेड़ियों को तोड़ना पड़ा। तो कौन उसे स्वीकार करता?धीरे–धीरे कुछ महापुरुषों ने स्त्रियों को इस दशा को समझना शुरू किया। यह समझना आरंभ किया कि वह स्त्री, जो एक पुरुष को जन्म देती है, पुरुष को ही नहीं महापुरुष को जन्म देती है, महापुरुष ही नहीं, अवतारों को जन्म देती है; वह कैसे पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं कर सकती!

स्त्री में इतने गुण हैं कि पुरुष उनका मुकाबला भी नहीं कर सकता। अगर विचार किया जाए, तो हमारे सभी बुद्ध पुरुष स्त्रैण हो जाते हैं समाधि को प्राप्त करने के पश्चात। आज स्त्री को लगा कि वह जीवन दान देती है, एक बच्चे को अपने भीतर बड़ा करती है, फिर अपने प्राणों की बाजी लगाकर उसको जन्म देती है, उसका पालन–पोषण करती है, तो वह पुरुष से कम कैसे हो सकती है?पुरुष को ही चाहिए कि वह उसको सम्मान दे, उसके अधिकारों का हनन न करें।

महिलाओं को पुरुष से कम नहीं आँके। उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्वीकार करे। ऐसी स्थिति को समझते हुए समाज के बहुत लोग आगे आये, जिन्होंने नारी चेतना को विकसित करने का प्रयास किया। राजनीतिक आंदोलन हुए, सामाजिक आंदोलन हुए, यहाँ तक कि स्त्री–पुरुष की समानता को स्थापित करने के लिए एक लक्ष्य को निर्धारित करना आवश्यक समझा। महिलाओं लिए पुरुषों के समान शिक्षा और घर से बाहर निकलकर अपने को स्थापित करने के विषय में सोचा। इस बात के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि अगर हम स्त्री–पुरुष समानता की बात करते हैं, तो हमें शक्ति संतुलन के सिद्धांत को समझना होगा। क्योंकि शक्ति का दुरुपयोग करना ही पुरुष विशेष का अधिकार समझा जाने लगा था, लेकिन इन सब बातों को पीछे छोड़कर अगर हम सबसे पहले स्त्री की समस्याओं को देखें तो उन्हें यह सब अधिकार अतिरिक्त अधिकार के रूप में मिलने चाहिए, जैसे कि प्रजनन संबंधी अधिकार, घरेलू हिंसा को समाप्त करने का अधिकार, माँ बनने पर उचित अवकाश और पुरुष के समान वेतन के साथ–साथ यौन उत्पीड़न को समाप्त करना भी आवश्यक माना जाने लगा है।

इसलिए आज अगर स्त्रियों के विषय में सामाजिक स्तर पर सोचना शुरू किया तो बौखलाहट में बहुत कुछ घटने लगा, जैसे वाद–विवाद ने जोर पकड़ा और किसी ने इसे 'नारीवाद' कहा, किसी ने स्त्री–विमर्श और भी न जाने कितने नाम दिये गये, लेकिन कुल मिलाकर एक ही तथ्य पर दृष्टि जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर सोचने का ढंग अलग–अलग है। यह मैं पहले भी कह चुकी हूँ कि परम्पराएँ जो मान्यताएँ बन चुकी थीं, उनको तोड़ना बहुत कठिन महसूस होने लगा। पुरुष समाज के दोहरे नैतिक मापदंडों और स्थापित मूल्यों, उनके मध्य होनेवाले अंतर्विरोधों को समझने के लिए बहुत गहन दृष्टि की आवश्यकता हे। प्रश्न यह उठता है कि स्त्रियाँ अपने अनुकूल किसी निर्णय को नहीं ले सकतीं?क्यों उन्हें अनुशासित और अपने अनुरूप रखे जाने के लिए बाध्य किया जाता है?आज भी उन्हें साँचों में ढालने की पूरी कोशिश की जाती है। स्त्री को एक ही स्तर पर लड़ना नहीं है, बल्कि उसके सामने कई मुद्दे हैं।

आज मैं एक बात सारी स्त्री जाति से कहना चाहूँगी कि सबसे पहले तो तुम सब एक हो जाओ। स्त्रियाँ कभी एक नहीं हुईं। कारण...पुरुष सत्तात्मक समाज में रहते–रहते केवल पुरुष को ही सही ठहराने की उसे आदत सी पड़ गई है, इसलिए उसे इस गहरे गड्ढे से बाहर निकलना होगा। मैं यह कहना चाहूँगी कि दूसरों के सिर पर अपने महत्त्वाकांक्षी सपने मत देखो। अब उन सारे नियम कानूनों से बाहर आ जाना चाहिए, जो पुरुषों द्वारा निर्मित है। सामाजिक रूप से स्वतंत्रता भी स्त्री का जन्मसिद्ध अधिकार है, अगर उससे कोई गलती भी होती है, तो उसे अपराधी की तरह न देखा जाए। दुनिया के ताने–बाने से अपने आपको अलग करना बहुत आवश्यक है और किसी की बातों से उसे कोई अंतर नहीं पड़ना चाहिए, स्त्री को मस्त रहना सीखना चाहिए। उसे चाहे कोई कुछ भी कहे, कुछ भी हो जाए, कितनी भी परिस्थितियाँ खराब हो, लेकिन जिंदगी को मजबूती से जीना है और यह याद रखना है। तुम्हारा आत्मसम्मान उधार नहीं है, जो यह समाज तुम्हें देगा। यह आत्मसम्मान तुम्हारे भीतर से आना चाहिए। समय आ गया है कि समाज अपना नजरिया बदले और स्त्री को आज देवी बनने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह एक सामान्य मनुष्य है और उसे अपनी उस सामान्यता को भरपूर जीवन को जीना है। जितने नियम–कानून इस समाज ने उसके लिए बनाए हैं,

वह पुरुषों के लिए भी उसी प्रकार से होने चाहिए और सबसे बड़ी बात अगर जिंदगी को ढंग से जीना है, तो वह उसे अपनी शर्त पर जीना सीखे। जो गलत है, उसे गलत कहने की हिम्मत भी होनी चाहिए। आज के समाज में एक अच्छी स्त्री और एक अच्छी लड़की का जो प्रमाणपत्र मिलता आया है, उसे फाड़ देना चाहिए। लेकिन इसके साथ–साथ एक बात का और भी ध्यान रखना है कि स्त्री को अपनी संभावनाओं को भूलना नहीं है। जिंदगी को जीने के लिए पुरुषों जैसा व्यवहार नहीं करना। स्त्रियाँ पुरुषों जैसा ही व्यवहार करने लगी हैं, जैसे वे भी शराब पीने लगी हैं, सिगरेट पीने लगी हैं, पुरुषों के समान ही पुरुषों की तरह स्वतंत्रता का प्रयोग करने लगी है। यह तो स्वतंत्रता नहीं हुई, बल्कि यह तो ऐसा हुआ कि वह पुरुष की ही छाया बनने लगी है। उसी का अनुकरण करने लगी है, उस जैसा व्यवहार करने लगी है तो इसका तो अर्थ यह हुआ कि वह फिर अपने नारीत्व को भूल उसकी ही कार्बन कॉपी हो रही है, लेकिन उसे खुलकर जीना है, इसका यह भी अर्थ नहीं कि वह चरित्रहीन हो गयी है।

यौन स्वतंत्रता भी इस लड़ाई का विशेष मुद्दा है। कारण...केवल पुरुष को सारे हक प्राप्त हैं। कोई घटना या दुर्घटना के लिए स्त्री को ही जिम्मेदार क्यों ठहराया जाता है?जेंडर के नाम से स्त्री और पुरुष को सामाजिक स्तर पर दी गई एक सामान्य सी परिभाषा है, जो उन दोनों को विभाजित करती है। आर्थिक और राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर हम जितने भी मतभेद देखते हैं, उन सबमें एक बड़ा कारण स्त्री और पुरुष में विभाजन की एक रेखा है, हमने समझ से काम नहीं किया, हमने प्रयास नहीं किया कि किस प्रकार हम स्त्री को उसके पूरे अधिकार देकर अपने समाज को, अपने राष्ट्र को, विश्व को उन्नति के मार्ग पर ले जा सकते हैं और आज की स्थिति में स्त्री को ही यह निर्णय लेना है कि वह वस्तु नहीं है, इसलिए उसे अपने अधिकार की रक्षा स्वयं ही करनी है।

यह भी देखा गया है कि पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करने के साथ–साथ उसे अपनी नारीत्व की रक्षा करनी है। उसे अपने ही गुणों को विकसित करना है। अपनी ही संभावनाओं का विकास करना है। अपने जैसा बनाना होगा और अपनी शक्ति को पहचानना होगा।

अगर स्त्रियाँ चाहती हैं कि उनका वस्तु की तरह उपयोग न किया जाए तो उन्हें समझना होगा कि स्त्रियाँ न तो पुरुषों से हीन हैं और न समान हैं। स्त्रियाँ पुरुषों से बिल्कुल भिन्न हैं और जबतक स्त्रियाँ अपनी भिन्नता की भाषा में, अपने व्यक्तित्व की भाषा में सोचना शुरू नहीं करेंगी, तबतक या तो वे पुरुष की दास होंगी या पुरुषों की अनुयायी होंगी।

अंत में मैं यही कहना चाहूँगी कि स्त्री ऊष्मा का स्रोत है। उसके प्रेम, उसके समर्पण को यदि पुरुष की प्रतिभा से जोड़ दिया जाए तो चमत्कार संभव हो सकते हैं। अंत में मैं कहना चाहूँगी कि यह पुरुषों द्वारा नियोजित समाज है। अबतक स्त्री को हमने कोई सम्मान नहीं दिया और अगर हम स्त्री को सम्मान देना चाहते हैं तो हमें अपनी पूरी नैतिक धारणाओं को, मर्यादाओं को रूपान्तरित करना होगा।

कविता :

शैलेन्द्र शरण,
आनंदनगर, खण्डवा (मप्र)
मो.8989423676

तनाव में

बेटी से कहता हूँ
यह ठीक नहीं...
कहती है
क्या ठीक नहीं?
क्यों ठीक नहीं?
क्या यह ठीक नहीं
क्या यह सच नहीं

उसकी माँ भी उसके पक्ष में है
अलग–थलग पड़कर
अखबार में खोजने लगता हूँ
इस शनिवार कौन आएगा शहर में
किस मनोचिकित्सक से परामर्श लूँ

मैंने कहानियों की किताबें
रख दी हैं आलमारी में
आजकल पढ़ता हूँ
तनाव कैसे कम करें

रह नहीं पाता उसके बिना
आजकल पल–पल पर
जरूरत होती है उसकी
उसे लगता है
मैं सीधे क्यों नहीं बैठता एक तरफ

उसने पूछा बैंक गये थे
मैंने कहा नहीं
फिर कहाँ थे इतनी देर

मैंने कहा
कुछ साहित्यिक बातें करनी थी
मित्र के घर था
आजकल कहीं भी जाता हूँ
मानसिक रूप से साथ रहती है

कब लिखते हो यह सब
मैंने कहा रात में
उसने पूछा सोते कब हो
मैं चुप रह गया

उसने कहा
रात भर जागते हो
मैंने कहा–हाँ
नींद कब लोगे
ऐसे तो बीमार हो जाओगे
मैंने कहा
इस उम्र के गुजरने
और फिर
मरने के बाद करना ही क्या है

उसे लगा बीमार न हो जाऊँ
बातें की उसने एक साथ
समय पर
सो जाने की अपील की
थपकियाँ दीं
यकीन मानिये
गहरी नींद आयी उस रात

भरोसा

एक प्रश्न से
परेशान होता हूँ
एक प्रश्न के भीतर के सच की
बिल्लोरी कांच से
पहचान करता हूँ
एक झूठ की रहा अंजाने में
खुद ही आसान करता हूँ
एक झूठ जब
सचमुच झूठ निकलता है
खुश होने की बजाय
दुनिया पर
भरोसा टूटने लग जाता है।

आलेख

मीरा से तसलीमा तक की खबरनबीस नासिरा शर्मा

डॉ. अरुण तिवारी गोपाल
तुलसीनगर काकादेव कानपुर नगर (उप्र)
मो.–8299455530

स्त्री की मानवीय इयत्ता की प्राप्ति हेतु अविराम संघर्ष की गतिमयता जिबह होती मेमने की कसाइयों की विरोधी सत्ता में, भागमभाग करके बचने से अधिक की एप्रोच अभी नहीं हो पाई है। विमर्श की बात हो या विमर्श के लिए बुद्धि की बात हो, बुद्धि प्रदात्री सरस्वती, स्वयं नारी होकर, प्रत्यय में ठगी और भौतिकता में देहभर 'भोग्य सौंदर्य' के सीमांत में रची गयी। भले ही ब्रह्मा रच और रीझकर सृजन के नाम पर स्वयं को ही क्यों न हार गया हो और स्फोट से लेकर अक्षर ..शब्द..वाक्य..ग्रंथ तक वही साहित्य की विजयगाथा बनी हो।

समाज के शास्त्र से त्रस्त, लूटनेवाले उफनते शोर की भयावह व्यवस्था में परित्राण के लिए अवाक विवश दृष्टि की बेचारगियाँ झेलते, हीन और पराधीन, वह आधी दुनिया, जो शेष आधी दुनिया की जननी है। वह अभी तक मनुष्य को आदिम भूख की 'भोग' और कोखजायों की शासनवृत्ति के 'दासी योग' तथा विगत 50000 वर्षों से सभ्यता की प्रगतिशील साजिशों के मध्य प्रकारांतर से नारी के मन, आत्मा व इतर इयत्ता को मात्र देह में कन्साइज करने के 'रोग' की 'लक्षण जंजीर' नहीं खोल पाई है।

मातृसत्तात्मक वैदिक व्यवस्था की अपाला, विदुषा, घोषा की मेधा तो आत्महंता आस्था के भस्मासुरी नृत्य की रुनझुन से आगे ठुमक ही नहीं पाई। खानाबदोशी छोड़ने और संपत्ति के स्वामित्व के चलते, वैदिक व्यवस्था या अन्य विश्व का समाज, दैहिक क्षमता के बहाने वस्तुतः मातृसत्तात्मक से पित्रवंशिकता के रास्ते पितृसत्तात्मक ही होता गया है। भले 'औरत के लिए मर्द', क्लैन, विशू या विशा किसी सामाजिक इकाई में रहे हों, पर शूद्र, कुत्ता और कौआ की भाँति अपनी उत्कट यौनकर्म की भूख के चलते, उनके अक्षम पौरुष ने स्त्री को भ्रामक नियंत्रण हेतु असत्य, पाप और अंधकार की प्रतिरूपिणी कहा।(शतपथ ब्राह्मण 1.1.31)

वैदिक के बाद लौकिक संस्कृत युग में बहुपत्नीत्व भोगती, कैकेई हो या बहुभ्रातृपतित्व भोगती हुई द्रौपदी। इस मर्यादित यौन व्यवहार तथा दोगली मर्यादा के भयानक परिणामों पर यदि कवि दृष्टि बिना कारण का पड़ताल किये, पड़ी तो कदाचित इसलिए कि वे महान कवि पुरुष ही थे। मत्स्यंगधा को कांटा डालकर फँसाने में व्यास की दिव्यदृष्टि, मातृकोख की रक्त श्रावणी से लाल रेखाएँ खींचने में विवश, पितृसत्ता की गौरवगाथा ही गाती रही।

वैदिक, लौकिक संस्कृत से उतरकर शौरसेनी–अर्धमगधी के दाल–चावल के साथ अन्य मध्यकालीन भाषाओं की खिचड़ी में गुँथी संवेदना, मीरा की बानगी से 'शील शक्ति सौंदर्य' का दुपट्टा फेंककर, कर्तव्य, निष्ठा, सहिष्णुता, त्याग, क्षमा की धार्मिक अफीम को थूँककर, जिद्दी, अहंकारी कुलांगार होकर, लोक लाज व जगत की कुल–काणि को पानी सा बहाकर, पूरी चारित्रिक दृढ़ता व पारदर्शी ईमान से, उत्पीड़ित स्त्री के दाह और विरहिणी के हाहाकारी आह को अभिव्यंजित करती पहली नारी विमर्शिका सिद्ध होती है। कान्हा के ब्याज (सहारे) से राजस्थान के जोगियों की दृष्टि की 'प्रेमकटारी' में बावरी देह–भूख लिये मीरा को काल्पनिक सेज सुख की सेक्सुअलिटी की 'अकुण्ठ डिमांड' और भड़काती है, उनकी यह 'कबहुँ मिलैगो...तू जोगिया, मिलकै, तपत बुझाई' की फायर अपील ही नासिरा की, 'संगसार झेलती हुई, 'असिया' पूरी संजीदगी से बाँचती हुई कहती है–'मेरा और उसका रिश्ता?आदम और हव्वा का है...समाज?कौन समाज?औरत मर्द का आपसी रिश्ता, किसी समाज, किसी कानून का मोहताज नहीं होता.. शराफत कुछ औरतों की मजबूरी हो सकती है, क्योंकि उनकी तरफ कोई आँख उठाकर देखना पसंद नहीं करता है और इस मजबूरी में एक पाक पवित्र बनी रह जाती है...मगर मेरे साथ यह मजबूरी नहीं है। गुनाह का पक्का मीठा फल छोड़ने का दिल नहीं, अंजाम पता है। संगसार...मगर मोहब्बत लौटाने का दम नहीं...इस तन को सुलाना अब मेरे बस की बात नहीं है।''

और इसी के साथ आदम की अजान की दैहिक भाषा–''तुम्हारे इस पाक जिस्म पर..आज मैं नमाज अदा करूँगा, ताकि यह इबादत गाह...'' कहकर सीने पर हाथ रखकर नियत बाँधी। फिर दोनों हाथ उठाकर खामोशी से उस खुदा को याद किया, जिसका दूसरा नाम मोहब्बत है। फिर रुकूँ में झुका और उस नंगी छाती के बीच सिजदे में गिरा। दोनों संगमरमरी गुम्बदों के बीच, बालों से भरा सिर, आस्ताने पर टिका, अपनी निष्ठ और वफादारी की कसम खाता रहा...तन एक हो गये...धड़कन एक हो गई। अपने को देखने, इस दुनिया को पहचानने और खुदा तक पहुँचने का रास्ता, एक होकर बदन में पेबस्त हो गया...।

और पकड़े जाने पर न तो असिया पति, सास–ससुर के सामने जलालत में महसूसती है और न खुद को दोषी। वह तो खुदा से ही पूछती है... अगर यह गुनाह था तो फिर ऊपरवाले इस बदन में यह प्यास क्यों भरी।''

और जेलर के पूछने पर, ''कोई आखिरी ख्वाहिश...?' असिया हँसती चली गई...जब जीना चाहती थी, तब सबने तन पर सौ–सौ पहरे लगाए, किसी ने नहीं पूछा कि औरत तेरी ख्वाहिश क्या है?और आज खुद मौत लेकर सिरहाने खड़े दुनियावाले पूछ रहे हैं–आखिरी इच्छा...हाँ, मेरी जन्नत, एक पल के लिए मुझे वापस दे दो।..

इस तरह शमन–दमन और विवश समझौते पर आश्रित आरोपित विवाह संस्था की नकार लिये विद्रूपात्मक भाषा के सहारे मध्यकाल की सामाजिकता में मीरा जो संकेत लिये हैं, वही मित्रो मरजानी की कृष्णा सोवती से अधिक मुखर होकर...इसी जन्म में 'शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्' के चार्वाक दर्शन को जीने के लिए धर्म, नैतिकता के छल को छेदती हुई नासिराजी के सृजन में जैसे अभिव्यक्ति हुई है। मध्यकाल तथा उसके अनन्तर मुस्लिम संस्कृति के आक्रामक फैलाव तथा विश्व में कॉलोनाइजेशन के दौर में पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने परिवार, विवाह, धर्म, साहित्य, दर्शन, न्याय और मीडिया से स्वनिर्मित स्वार्थी माध्यम से 'स्त्री को मजे के लिए दैहिक वस्तु' अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए चोली, घाघरा, सलवार, साड़ी तथा दर्शन हेतु सौंदर्य भर मानती है तथा 'सभ्यता की सीढ़ियों' की तरह इतिहास में उसपर चढ़कर तारीखों का पट्टा टाँगती है। विकसित देशों के आँकड़े (मार्क्सवादी देशों को छोड़कर) सर्वाधिक भ्रामक है और हर देश व्यवस्था में औरत दोयम नागरिक है–प्रायः तिरस्कृत, उपभुक्त, लांछित व दमित। जागरण काल के हिन्दी सृजन में बंकिम के प्रभाव, भारतेन्दु के अव्यावहारिक भाव, द्विवेदीजी के छद्म नैतिक आतंक के समय, नारी विमर्श अपनी रूढ़ मातृत्व छवि का घूंघट न उतार सका और छायावादी वृत्तियों में वह दुख को बिना जीते, मिटकर मृत होने को गौरवशाली त्याग की 'शृंखला की कड़ियाँ' न तोड़ सका।

भारतीय कथा साहित्य के कथासम्राट पद भले प्रेमचंद के पास हो, पर शिवरानी देवी, उनकी 'नारी वकालत' को जब छद्म सहानुभूति कहती हैं, तो वह युग का 'खरा सच' ही होता है।

शिवरानी जी, महादेवजी का वैचारिक–दार्शनिक, चिंतन हो या

कृष्णा सोवती की विशुद्ध शरीर के स्तर पर जीवन जीती, 'डार से बिछुड़ी' की 'पाशो' हो या पोर–पोर देह–भूख की तृप्ति वांछी–कामना संचालित दबंग, 'मित्रो', दब्बू 'जया' और गुमसूम 'रत्ती' सभी वायलेट हैं, एग्रेसिव हैं, पर अपने कंसर्निंग पूरी 'एसर्ट' और कान्सस।

इन सभी में आर्य–अनार्य नारियों के विद्रूप द्वैत, हिन्दू– मुस्लिम साझा संस्कृतियों की साम्य विरासती मजहबी पड़ताल तथा यहूदी, इस्लामिक अरबी, अफ्रीकी, अमेरिकी, यूरोपीय और यूरेशिया के नारी जीवन परिवेश के भोगे यथार्थ की वह अनुभव संपत्ति नहीं है, जो एक साथ पूरी सौम्य साम्यता लिए नासिरा शर्मा जी की सृष्टि में प्रामाणिकता के साथ उपलब्ध है। 'कठगुलाब' में मृदुला गर्ग की 'विवाहसंस्था' के प्रति आहत औरतों की अनास्था, मर्द के विरोध में मर्द न होकर सर्जक होने की व्यामोही वांछा में इतनी व्यावहारिक नहीं लगती, जितना कि नासिरा शर्मा जी के यहाँ 'शाल्मली' में नरेश और शाल्मली के स्वामी–दासी, रक्षक–रक्षिता संबंध कैसे आकर्षण के घोर घृणा में बदलते हुए भी अद्यतन 'कॉन्ट्रेक्ट मैरेज' 'लिविंग इन रिलेशनशिप', 'होमोसेक्सुअ– लिटी आदि की स्वच्छंद प्रतिबद्धता के अनंतर भी 'विवाह' से बेहतर कोई 'पुरुष स्त्री संबंध' की सिद्धि नहीं कर पाते।

तभी तो शाल्मली के माध्यम से नासिराजी स्पष्टत:, न तो मैत्रेयी प्रभृति की भाँति 'पुरुष विरोधी मानसिकता' रखती है और ना ही जया वादवानी की तरह 'पितृसत्तात्मक सत्ता को लताड़ती हैं, वरन् समस्या के मूल को पकड़ते हुए कहती हैं–''मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ।'' नासिराजी के पति से, या को, मुक्त कर के नहीं, वरन विवाह के अतिरिक्त कहीं, बेहतर साथ के अभाव के प्रति जागृत होने से उसी को 'शोपिंग' करने को ही श्रेय मानती है।

इसी तरह नासिराजी का 'ठीकरे की मंगनी' पूर्व और पश्चिम के मार्क्स के–'विवाह अस्तित्व और व्यक्तित्व की कत्लगाह है', एंजिल्स के 'परिवार नारी की घरेलू दास्तां पर आधारित और व्यवस्था है' तथा मिल्स के 'विवाह वैधता पूर्ण दासतंत्र को पुख्ता करता है' की भटकती अत्याधुनिकता से परे तथा मुस्लिम कठमुल्लेपन व सनानती पोंगापंथी स्त्रीत्व के विरुद्ध फायर गर्ल तस्लीमा की आक्रामक आपत्तिपूर्ण, अशालीन, विद्रोही भाषा से दूर, समस्या का सहजता से रखती, निपटाती और एक सफल अभिव्यंजना है।

नवीन–अर्वाचीन, धर्म प्रगतिशीलता, आदर्श व्यावहारिकता की क्षीण विभाजक रेखा पर 'विवाह' के साथ, ग्लोबल लेस्बिनयन, ग्रे–कल्चर के साथ–साथ ऑनर किलिंग का वहशी तांडव झेलते–कबीलों से लेकर साइबर वर्ल्ड तक की जटिलताएँ, साहित्यिक अभिव्यक्तियों के लिए चुनौती है। द्रुतगति से भागते समय में युग और संस्कृतियों के इस संक्रमित संवेदन में नारी–विमर्श, कथा से अधिक आत्मकथा के स्वरों में मुखरित होकर समाज को अपनी प्रामाणिक–भुक्त–संवेदना परोसने में लगा हुआ है। जिनमें चंद्रकिरण सोनरिक्सा की 'पिंजरे की मैना' (2008), मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी' (2006), कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा', मैत्रेयीजी की 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2002), प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या' (2006) प्रभृति मुख्य हैं और इन सभी में प्राय: अपने–अपने सेक्स उत्पीड़न के, कच्चे कैथावाले खट्टे चटखारे हैं। इन सभी की सहमी विवश पर अस्वीकृति की भाषा का रूप, फौजियों पारिवारिक संबंधियों, मित्रों, सहपाठियों की कामुक ईप्सा को जीती, तस्लीमा नसरीन की भाषा का रहा। यह दीगर बात है कि भले सभी इंतजारी रही हो, पर प्रसिद्धि हेतु सभी को 'कथित फतवा' या 'राष्ट्र निष्कासन' नसीब नहीं हुआ, क्योंकि उनके टेढ़े खेल, तस्लीमा के 'उल्टा खेल', जितने धारदार नहीं हुए, देखें–

''मैंने उस दिन रमना में देखा एक लड़का। लड़की खरीद रहा है...मेरी इच्छा होती है लड़का खरीदने की। जवान जवान लड़के। छाती पर उगे घने बाल... उन्हें खरीदकर पूरी रौंदकर सिकुड़े अंडकोष पर जोर से लात मारकर कहूँ–भाग साले।(उल्टा खेल, कविता नसरीन पृ. 76)

परन्तु पश्चिमी परंपरा के प्रभाव व एशिया की लेखिकाओं के अनर्गल आक्रोश में साम्य बैठाते हुए, एकांगिता, आवेगिता, आवेगात्मकता को पहचानते और इन व अन्य विद्रोही उच्छृंखल वादों–विवादों से परे रहकर द्वंद्वात्मकता पूर्ण समस्यापरक, लेखन के कारण ही नासिराजी का नारी विमर्श अपना वैशिष्ट्य विलगत: निर्धारित करता है।

वैदिक पृष्ठभूमि के मंत्र, पौराणिक क्षेत्र के तंत्र, तत्पश्चात् संस्कृत व मध्यकाल की सामंती मनोवृत्तियों के यंत्रों की, सूक्तियों में संदर्भ सहित पड़ताल करते हुए श्लोकों, हदीसों, आयतों में, आगे बढ़ता नारी विमर्श, तस्लीमा नसरीन के यहाँ 'समता' लाने के लिए पुरुष देह के सौंदर्य शास्त्र तथा ललना, कामनी, रमणी, भार्या, अबला, देवी के समानांतर स्वीकृति शब्दावली तथा मानसिकता की डिमांड करती है।

यद्यपि तस्लीमा जी का भुक्त 'यौन शोषण' की शृंखला अनुक्रमणिका, 'मेरे बचपन के दिन' में अमान चाचा और शराफ मामा तथा साहित्यिक साथी शमशुल हक व नईम ('द्विखंडित' पृ. 86, 130) के दंश समाए हैं, पर उनकी घृणा रोग वृत्ति पर है, रोग अंग या उसके व्यक्तित्व पर नहीं और यही वे पुन: नासिरा शर्माजी के समानांतर हो जाती है।

धर्म, साहित्य, नीति निरंतर स्त्री अस्मिता को 'भोग्य वस्तु' या 'त्यागी', 'तपस्विनी' सिद्ध करके अस्तित्व बोध से बरगलाते रहे हैं। हिन्दू मठों में देवदासियाँ, मंदिरों में महंतों की नग्न सेवारत धर्मभीरु चेलियाँ, राजदरबारों में नर्तकियाँ, महलों में, हरमो में बांदियाँ, जैन–बौद्ध–गोरख विहारों के गर्भगृहों की सेविकाएँ तथा मुस्लिम पीर–मौलवियों के चमत्कार तले बिछी गरम देहों के समर्पित अस्तित्व, काम सुख की ऐन्द्रिकता को बिना महसूसे, पुरुष के बिस्तर को गर्म करने को, सोद्देश्य सुन्नत की हुई नारियाँ अप्राकृतिक–अमानुषिक हों या जायज, इस पुरुषों की दुनिया में पुरुषों की ही भूख, ईप्साओं व त्रुटियों के 'पल्लवन उत्सव' की भोग्य वस्तु से अधिक कभी कुछ नहीं हो पायीं। मातृभूमि योनि की उपनिवेश होने तक की यात्रा में नारी का विगत जीवन, विवाह संस्था के भीतर कुंवारे व वैधव्यपन में, अपनों के बीच, अपनों द्वारा नियोजित, घर के निर्जन कोनों में यौन शोषण आदि की मानसिक यातना तथा उसके द्वारा बेबसी में, घर के अंदर बाहर या चकला खाने या धंधे में भोगी गई 'नरक यातना' से बहुत ही ज्यादा भयावह, घृणित और त्रासद भरा रहा है। सामाजिक शांति के दिनों की रंगरेलियाँ में लपलपाती पुरुष वासना के लिए नारी यदि जन्नती गरम हलवा है तो सर्वाधिक अशांति, आतंक व युद्ध की विसात और विजय का रथ औरत के धड़ पर धड़धड़ाते हुए ही गुजर कर अपनी यात्रा पूर्ण करता है।

युद्ध–संघर्ष–आंतक–दंगा सभी इन विषम परिस्थियों में नुची–पिटी–लुटी ही सही, नारी के सहनशील औदात्त, दृढ़ निष्ठा के बहुआयामी चित्र नासिरा जी की लेखनी ने जिस शिद्दत से उकेरे हैं, वह पुरुष की खोखली सहानुभूति को नाटक तथा जाति–धर्मभीरु भड़ुवाबाजी की पोल खोलती है। नासिरा शर्मा जी के सृजन में और केवल दकियानूसी, जज्बाती भर नहीं है, वह हालात से, तकदीर से, ममत्व से, कर्तव्य से, भयावह आतंक के बीच भी संघर्ष करती है।

दुनिया में मजहब और सियासत की आड़ में आदमी आतंक बरपा सकता है। हिंसा, आगजनी फैला सकता है। कौरवों या रावण के विरुद्ध प्रतिरोध कर सकता है। बचाव में कृष्ण या जयद्रथ की तरह भाग सकता है या नपुंसकता में हरम में कई बीवियाँ पालकर अपनी अक्षमता के चलते ऋषियों से क्रॉस कराकर वंश–परंपरा बढ़ाने में बेशर्माई से, नियोग के आड़ में पंचपुत्रों,

शतपुत्रों वाला चक्रवर्ती सम्राट बन सकता है। परन्तु अंबालिका की भाँति तिरस्कार को तथा दौपदी की भाँति पाँच पतियों या फूलन देवी की तरह 24 ठाकुरों के सारी वहशी बलात्कार को सारी रात झेल व सह नहीं सकता। अखिल ब्रह्मांड के इस अणोरणीयान– महतोमहीयान में सृष्टि–पुरुष के व्यवहार–व्यापार में, सहनशीला दृढ़निश्चयी औरत की स्थिति–परिस्थिति को दर्शाती हुई 'तीसरा मोर्चा' खोलती हुई नासिराजी कहती हैं–''मैं एक औरत हूँ और औरत की अस्मत तो हिन्दू–मुसलमान नहीं होती, जो हिन्दू और मुसलमान तो सिर्फ वह मर्द होते हैं, जो अपने मजहब के उन्माद में औरतों की आबरू लूटकर अपना धर्म निभाते हैं। आगे वे 'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे, न दैन्यं, न पलायनम्' को जीती हुई उसी पात्र से मदद हेतु आए हिन्दू मुसलमान भाइयों से कहती हैं, जा उससे इस भयावह आतंकी क्रौर्य–परिवेश से सुरक्षित, साथ में भाग चलने को कहते हैं–'तुम दोनों, जाओ भाई, मैं माँ हूँ। मुझे बच्चों को दफनाना है...पत्नी हूँ, मुझे अपने शौहर का इंतजार करना होगा।... औरत हूँ, इसलिए जुल्म के खिलाफ मुझे जिंदा रहना है... मुझे भागना या मुँह छिपाना नहीं...मुझे अभी जिंदा रहना है...।'' मीरा कालीनरणापा 'विधवा पुनर्विवाह' के विकल्प के अभाव में यदि कलपता है, तो जागरण काल के राजा राममोहन राय, विद्यासागर प्रभृति माननीयों की सहानुभूति को बंकिमचन्द्र, भारतेन्दु आदि सम्मान नहीं दे सके, भले ताराबई शिंदे, रमाबाई चीख–तड़पकर 'पारिवारिक रखेलों' की नर्क मुक्ति का प्रतिशोधात्मक भाषा में नारी वकालत करते हुए, तुलना करते हुए, पुरुष को चिल्लाते हुए कहे–तुम अपनी पत्नियों की मृत्यु के उपरांत अपने मुँह पर कालिख पोतकर, दाढ़ी–मूँछ मुड़वाकर अरण्यवास क्यों नहीं स्वीकारते?

धर्म के छल पाठ और बकरियें–गायों की तरह कान–नाक फाड़कर गुलामी के चिन्हों (आभूषणों) को नीति व सौंदर्य के भ्रम मानकर 'मीरा' 'अज्ञात हिन्दू महिला' आदि ने 'आर्य नारियों' और उधर तस्लीमा ने मुस्लिम कठमुल्ली रिवायतों, शरीयतों की पुंसवादी पोल खोलकर मुस्लिम नारियों को उनके नरक से निकलवाने को जो शाब्दिक आयास किये हैं, उनके सौम्य–साम्य वाली साझी संस्कृति लिए प्रामाणिक उद्धरण नासिराजी के यहाँ अनुभवजनित व्यवहारिकता के साथ उपस्थित हैं। साहित्य के सामाजिक सरोकार चाहे काव्य में हो या विमर्श, एक विशेष तरह से कथ्य, परिवेश, संवाद व सम्प्रेषणीयता की डिमांड रखते हैं, जिसमें विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यंजित होकर कोई सृष्टि अपना दायित्व निभा पाती है। मीरा अपनी पंचमेल, सधुक्कड़ी अक्खड़ भाषा में तथा तस्लीमा तक बंग्ला के प्रभाव में क्रमशः अपने वैष्णव व शास्त्रीयता नहीं छोड़ पाती हैं, परन्तु नासिरा ने 'तजुर्बात के अंबार' अपनी बोलचाल वाली भाषा में, इलाहाबादी गंगा–जमुनी सभ्यता तथा मध्यपूर्व एशिया के मध्यवर्गीय मुसलमानी तहजीब को, तुलसी घरुआ, नवरात्रि के व्रत, गंगा मैया के नहान आचमन–तर्पण तथा गोश्त का सोलन देगची–कबाब, जांनमाज, तस्बीह... की टेक्निकल भाषिक शब्दावली से, मुहावरों–कहावतों के छोंकों के साथ, लोकहृदय व सहजता से साधारणीकरण करती हैं। नासिराजी के यहाँ विमर्श की कितनी भी गंभीरता हो वाक्यों में कभी उपदिष्ट नहीं होती, वह परिवेश व पात्र से सीधे संवाद के माध्यम से फलित होती दिखती है।

नासिराजी की यही शालीन लिंग भेद रहित, स्पष्ट अनाक्रामक व्यंजना शैली, उन्हें न मीरा की तरह कुलांगार कहला के तिरस्कार–बहिष्कार करवाती है और न तसलीमा की तरह काफिर मानकर मजहबी फतवे दिलवाती है, बल्कि ईरान की धार्मिक क्रांति व राजनैतिक आतंक के आग बरसाते महौल में, तन–मन से जूझकर अपने साहित्यिक हवन करे हुए खुमैनी के साक्षात्कार तथा 'खुदा की वापसी' में फरजाना के ब्याज से धर्म भीरु मुस्लिम समाज के मौलवियों के कठमुल्लेपन की पोल खोलने आदि में 'सच की पर्दाकुशाई' करते हुए भी फतवे के स्थान पर ओपन इनविटेशन प्राप्त करती हैं। उनका साहित्य के माध्यम से सामाजिक तप दिखाने हेतु किसी माध्यम से रखी आरती की लौ की आँच नहीं घुमाता, वरन हवनकुंड की दाह सहकर अपना जगहिताय का निर्वाह करता है। हिन्दू, मुस्लिम, क्रिश्चियन, यहूदी सभी महिलाएँ और उनकी समस्याएँ तथा उनको लेकर नारी विमर्श, बहु आयामी संदर्भों में उनकी लेखनी से सृजा है। भारतीय हिन्दू समाज के वैधव्य, पराधीन, दीनहीन, दासी, गृहिणी, वधू की घुटन हो या मुस्लिम समाज की तलाक, मेहर, पर्दाप्रथा या पश्चिमी कथित नारी स्वतंत्रता की कैथोलिक–प्रोटेस्टेंट में जकड़न प्रभृति सभी आयाम उनके नारी चिंतन की व्यापकता सिद्ध करते हैं।

डॉ. दलजीत कौर
चंडीगढ़
मो.–9463743144

लघुकथा

सूखा पौधा

दफ्तर में सुबह से चहल–पहल थी। बगीचे को फूल मालाओं, रिबन, गुब्बारों से सजाया गया था। एक कोने में एक गड्ढा खोदा गया था। एक पौधा उसे गड्ढे में लगकर पेड़ बनने को आतुर थे।

12 बजे स्थानीय सत्ताधारी आए। पर्यावरण दिवस पर माली से पौधा लगवाकर। उन्होंने पानी देते हुए तस्वीर खिंचवाई। तस्वीर विभिन्न अखबारों में छपने चली गई। बारी–बारी से दफ्तर के उच्च अफसर से लेकर चपरासी तक ने पौधे के पास बैठकर तस्वीर खिंचवाई। सबकी तस्वीरें सोशल मीडिया पर पहुँच गयी। माली दो–तीन दिन छुट्टी पर था। चार दिन बाद जब माली पौधे को पानी देने पहुँचा, तो पौधा सूख चुका था।

आलेख

घनन घनन घन

देवेन्द्रराज सुथार
गांधीचौक आतमणावास, बागरा
जालोर, राजस्थान
मो.–8107177196

मानसून की आहट से मन नवीन ऊर्जा और उमंग से सराबोर हो जाता है। मेह की नवल–धवल बूँदें प्रकृति के यौवन का शृंगार करती प्रतीत होती है। चहुँओर हरितिमा पूर्ण मनमोहक दृश्य मन को आह्लादित करते हैं। जीवन में रस घोलनेवाली बरखा की बूँदें जब आसमान से उतरकर अंतस की देहरी को स्पर्श करती है, तो कई नव विचारों के अंकुर फूटने लगते हैं। सावन का महीना तो वर्षा ऋतु का पर्याय माना गया है। इस कारण ये लेखकों और रचनाकारों के हृदय के बेहद करीब है। कालिदास से लेकर हरिवंश राय बच्चन तक सभी को सावन ने मोहित और प्रेरित किया है तथा वे उनके लेखन का विषय भी रहा है। कालिदास का वर्षा ऋतु वर्णन तो संस्कृत साहित्य में अद्‌भुत वैशिष्ट्य को लिये हुए हैं। 'मेघदूत' में कालिदास ने मेघ का जितना खूबसूरत वर्णन किया है, उतना शायद ही कोई और कर पाया हो।

बारिश की ये बूँदें मन को किस प्रकार आशा और उल्लास से भर देती है। इसका रोचक वर्णन हिन्दी साहित्य में कई जगह मिलता है। चाहे वो हिन्दी साहित्य का मध्ययुग हो, जिसमें तुलसी, सूर, जायसी आदि कवियों ने पावस ऋतु का सुंदर और सरस चित्रण किया है या आधुनिक साहित्य में छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' या महादेवी वर्मा द्वारा लिखी वर्षा संबंधी कविताएँ हों या आज के लेखकों की आधुनिक लेखन क्षमता में वर्षा हो, सबने जैसे साक्षात् बारिश को जीने के गुर दिये हैं। हरिवंशराय बच्चन की एक रचना–''धरती की जलती साँसों ने मेरी साँसों में ताप भरा, सरसी की छाती दरकी तो कर घाव गई मुझपर गहरा, है नियति प्रकृति की ऋतुओं में संबंध कहीं कुछ अनजाना, अब दिन बदले, घड़ियाँ बदलीं, साजन आए, सावन आया।'' प्रकृति सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत की नजर से सावन को देखिए–''ढम ढम ढम ढम ढम ढम, बादल ने फिर ढोल बजाए। छम छम छम छम छम छम, बूँदों ने घुँघरू छनकाए।'' गुलजार साहब के अनुसार–'बारिश आती है तो मेरे शहर को कुछ हो जाता है।'' गीत गंधर्व गोपालदास 'नीरज' कहते हैं–''यदि होता घन सावन का, पिया पिया कह मुझको भी पपिहरी बुलाती कोई।''

आसमाँ में छाये काले मेघ घर्घरनाद के साथ जब बरसते हैं, तो मानो सूखी पड़ी दिल की जमीन पर प्यार के पुष्प खिलने लगते हैं। सहसा ही बावरा मन रिमझिम बारिश की मीठी फुहार के साथ उमड़–घुमड़कर बचपन की यादोंवाली बारिश में पहुँच जाता है। और फिर अनायास ही मन–मस्तिष्क के पर्दे पर धुंधली स्मृतियों का सजीव चित्रण होने लगता है। पश्चिमी राजस्थानी के बाशिंदों को बारिश के लिए लंबी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। यहाँ बारिश प्रायः जुलाई–अगस्त महीने में होती है। जल्द ही इन्द्रदेव प्रसन्न होकर धरती का कलेजा बारिश की बूँदों से ठंढा कर दे, इसके लिए यहाँ लोग अलग–अलग टोटके अपनाते हैं। जैसे यहाँ की महिलाएँ एक जगह अनाज का ढेर लगाकर जल्द ही इन्द्रदेव को बरसने के लिए अनुनय–विनय करती हुई नजर आती है।

पहली बारिश के बाद ही खेतों में जुताई का काम शुरू हो जाता है। पूरे दिन ट्रैक्टर चलता रहता है। जुते हुए खेतों की सौंधी मिट्टी से आनेवाली खुशबू में जीवन राग छिपा होता है। सुहाने मौसम में घर–घर से आनेवाली पकोड़े और मिर्ची बड़े बड़ों मुँह में पानी ला देती है। बारिश की एक–एक बूँद में कितनी ही अतीत की यादें दबी पड़ी हैं। सावन को बरसते देख भूली–बिसरी स्मृतियाँ का कारवाँ मानस पटल पर पुनरुज्जीवित हो उठता है। बारिश का मौसम प्रकृति में अधिकांश प्राणियों एवं वनस्पति जगत का प्रजनन काल होता है। प्रजनन काल में पौधों में सुंदर पुष्प आते हैं, उसी प्रकार प्राणियों के शरीर में भी हॉर्मोन्स की मात्रा में वृद्धि होने के कारण अनेक बदलाव दिखाई देते हैं। इन्हीं बदलाव के कारण शरीर सुंदर व बलिष्ठ दिखाई देने लगता है।

बारिश की बूँदें केवल मनोरंजन और मन बहलाने का साधन भर नहीं है। जल की ये बूँदें जीवन का अनिवार्य तत्व है। जल पीना जैविक आवश्यकता है तो दूसरी ओर जल स्नान, आचमन, पवित्रता की प्यार है। ध्यातव्य है कि जल एक प्राकृतिक और असीमित संसाधन है, किन्तु पीनेयोग्य जल की मात्रा सीमित है। पृथ्वी की सतह का 71 प्रतिशत जल से ढका हुआ है, जिसका 97 प्रतिशत भाग लवणीय जल के रूप में तथा शेष 3 प्रतिशत भाग अलवणीय जल के रूप में विद्यमान है, किन्तु इसका अधिकांश भाग ग्लेशियरों में बर्फ के रूप में ठोसीकृत है। मानव के पीनेयोग्य जल की मात्रा अत्यधिक सीमित है। भारतीय संदर्भ में बात करें तो यहाँ विश्व जनसंख्या का 17 से 18 प्रतिशत भाग निवासरत है तथा जल संसाधनों की मात्रा केवल 4 प्रतिशत है, जिसका अधिकांश भाग मानव के अविवेकपूर्ण क्रियाकलापों के कारण सीमित और संदूषित होता जा रहा है।

लिहाजा हमारे देश में पेयजल का संकट एक प्रमुख समस्या है। भूमिगत जल का स्तर लगातार नीचे जा रहा है और इस वजह से पानी की किल्लत बढ़ रही है। इस स्थिति में हमें जल की इन बूँदों को सहेजने की आदत डालनी होगी। राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों और गुजरात के कुछ इलाकों में पारंपरिक रूप से घर के अंदर भूमिगत टैंक बनाकर वर्षा जल संग्रह करने का प्रचलन है। इस परंपरा को अन्य राज्यों में लागू कर हम जल की गंभीरता को कम कर सकते हैं। वर्षाजल संचयन के द्वारा व्यापक जलराशि को एकत्रित करके पानी की किल्लत को कम किया जा सकता है।

आलेख

रचना में सत्य का प्रसारण

डॉ. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स, डी.लिट्.
3150, सेक्टर 24 डी, चंडीगढ़
मो. 9876301085

इस सच्चाई को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है कि आज के इस बदलते ग्लोबव्यापी परिदृश्य में जो भी रचनाकार असत्य एवं अज्ञानता का मुकाबला करते हुए सत्य एवं यथार्थ अभिव्यक्त करना चाहता है, उसे कतिपय कठिनाइयों, बाधाओं और चुनौतियों को पराभूत करना बेहद जरूरी है। यहाँ कहने का सीधा प्रयोजन यह है कि सच्चे एवं प्रतिबद्ध रचनाकार में सत्य उद्घाटित करने का जबर्दस्त साहस होना चाहिए; यद्यपि इसे हर जगह गुप्त रखा जाता है, उसमें सत्य को एक कारगर हथियार की तरह इस्तेमाल करने की निपुणता होनी चाहिए; यद्यपि इसे परिवेश दबाकर रखता है, उसमें यह चयन करने की निर्णय शक्ति भी होनी चाहिए कि सत्य किन लोगों के हाथों में सुरक्षित एवं प्रभावी रह सकता है; यद्यपि इसकी टकराहट कई चीजों से होती है। यूँ तो ये समस्याएँ फासीवाद के प्रभावाधीन रहनेवाले लेखकों के सामने अधिक आती हैं, लेकिन साम्प्रदायिक प्रदेशों एवं परिवेशों, जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कड़ा पहरा रहता है, में साहित्यरत कलमकार भी इनसे बच नहीं सकते। विश्व साहित्य एवं भारतीय साहित्य की उन तमाम प्रतिबंधित रचनाओं तथा सलमानरुशदी, तसलीमा नसरीन आदि रचनाकारों के विरुद्ध जारी किए गए फतवों का इतिहास हमसे अभी दूर नहीं गया है।

इसमें विवाद की कोई गुंजाइश नहीं कि लेखक को अपनी रचनाओं में सत्य को छिपाना नहीं चाहिए और जान–बूझकर असत्य भी नहीं लिखना चाहिए। वह न तो शक्तिशाली लोगों के सामने झुके और सिकुड़े तथा न ही निर्बलों को धोखा दे। विमर्श– निष्कर्ष गवाह हैं कि सबलों के आगे न झुकना कोई सरल कार्य नहीं है और निर्बलों को धोखा देना कोई बहुत फायदे की बात भी नहीं है। दमन और अत्याचार के समय को कोई भी सच्चा रचनाकार नजरअंदाज नहीं कर सकता। 'सोज़े वतन' की जब्ती पर हमीरपुर के तत्कालीन कलेक्टर ने प्रेमचंद को धमकाते हुए कहा था–''प्रेमचंद! इसे अपना सौभाग्यशाली समझो कि तुम अंग्रेजी शासन की प्रजा हो। यदि यह मुगलकाल होता तो तुम्हारे दोनों हाथ कटवा दिये जाते।'' इस धमकी ने प्रेमचंद को सत्य उद्घाटित करने के लिए अधिक ताकतवर एवं निडर बना दिया। वे आदर्शोन्मुखी यथार्थ से आगे बढ़कर परिशुद्ध यथार्थ के शिखरों को छूते गये। जाहिर है कि श्रमिकों के शोषण, सामाजिक अन्याय, भूख, अज्ञानता, युद्ध आदि के बारे में लिखने के लिए साहस चाहिए; क्योंकि ये अस्वस्थ चीजें समाज में विकृतियों को जन्म देती हैं। स्वयं की भूलों, पराजयों एवं असफलताओं का सच्चा ब्योरा देने के लिए साहस चाहिए। जैविक धरातल पर देखा जाए तो उत्पीड़न स्वयं में बहुत बड़ा अन्याय है। उत्पीड़क पुष्ट होते हैं, क्योंकि वे उत्पीड़न देते हैं। अपनी अच्छाई अथवा परोपकारिता को हर युग में हराया एवं कुचला जाता रहा है। ईसा मसीह, सुकरात, गैलेलियो, जॉन मिल्टन, चार्ल्स डिकन्स एवं ऐलिजाबेथ बैरेट बाऊनिगं के सत्य को भी तत्कालीन सरकारें बर्दाश्त नहीं कर सकी थीं। नाइजीरिया को प्रख्यात साहित्यकार, पर्यावरणविद् एवं मानवाधिकार के हिमायती केन सारो वीवा को नाइजीरिया सैनिक शासन ने फाँसी पर लटका दिया। सारो वीवा पर आरोप लगाया गया कि उसने अपनी रचनाओं एवं वक्तव्यों के जरिए कंपनी तथा नाइजीरिया फौजी शासन के खिलाफ अपनी विद्रोहात्मक आवाज बुलंद की थी। फाँसी पर झूलने से पहले सारो वीवा के आखिरी शब्द थे–''मैं नहीं रहूँगा, मेरे विचार रहेंगे, संघर्ष जारी रहेगा।'' साफ है कि रचनाकार का साहस सत्य को उजागर करने में है, परिस्थितियों से समझौते करने में नहीं। लेकिन साहित्यिक सत्य अक्खड़ एवं संदिग्ध भी नहीं होना चाहिए। मिथ्यावादिता से संघर्ष करते हुए ही रचनाकार सत्य को उद्घाटित कर सकता है। जब किसी रचना के बारे में कहा जाता है–''इस रचना में सत्य का उद्घाटन है' तो इसका तात्पर्य यह होता है कि उस रचना में कोई व्यावहारिक, तथ्यपरक, अकाट्य एवं मतलब की बात कही गई है।

सत्य लिखना इसलिए भी मुश्किल है, क्योंकि हर जगह इसे दबाया जाता है। लेकिन निर्भीक एवं सच्चा साहित्यकार दमन के सामने कभी आत्म–समर्पण नहीं करता। जॉन मिल्टन ने 'एरेपेगिटिका' में व्यक्त अभिव्यिक्ति की स्वतंत्रता विषयक तीखी एवं बेबाक टिप्पणी से सामाजिक एवं राजनीतिक हलकों में थर्राहट पैदा कर दी थी। आश्चर्य नहीं कि आगे चलकर मिल्टन का यही एरेपेगिटि का उसके महान महाकाव्य 'पैराडाइज लॉस्ट' की अग्रगामी विषय–वस्तु बना। टॉमस हार्डी ने 'टेस ऑफ द डि उरवरबिले उपन्यास' की नायिका टेस के माध्यम से विक्टोरिया की तथाकथित सेक्स नैतिकता के ढोंग को तार–तार कर दिया था। उनके 'ज्यूड द ऑब्सक्योर' उपन्यास के सत्य को सरगर्म वाद–विवादों के आक्रमण झेलने पड़े थे। जेम्स जॉयस के उपन्यास 'यूलिसेस' को भी प्रकाशन के समय कटु विरोध का सामना करना पड़ा था। स्पष्ट है कि टॉमस हार्डी और जेम्स जॉयस का सत्य बहुतेरों को सहन नहीं था। टी.एस. इलियट ने तो 'यूलिसेस' उपन्यास को आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण रचना घोषित करते हुए अपने 'द ईगोइस्ट' लंबे लेख में अमेरिका की सेंसरशिप पर तीखी टिप्पणी की थी। एक गंभीर कलाकार एवं साहित्यकार के लिए मानवीय अनुभव के सभी क्षेत्र वैध विषय हो सकते हैं, यह सच्चाई डी.एच. लारेन्स ने अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'लेडी चेटरलीज लवर' में व्यक्त की थी। प्रकाशन के बाद इस उपन्यास को प्रतिबंधित कर दिया गया था, लेकिन बाद में सत्य की विजय हुई और इसे संरक्षण मिला।

इसी प्रखर संदर्भ में डॉ. यश गुलाटी के शब्द उधार लेकर कहें तो लोकमान्य तिलक की 'शिवाजी के उद्गार' वीर सावरकर की 'भारतीय स्वतंत्रता समर', प्रेमचंद की 'सोज़े वतन', अक्सीर स्यालकोटी की 'स्वराज्य की गूँज', चाकर की 'बिजली', पाण्डेय हीरालाल व्यग्र की 'व्यग्र बम बोले', प्रभुनारायण मिश्र की 'आजाद भारतवर्ष' द्वारका प्रसाद की 'असहयोग फाग' लक्ष्मीचंद की 'भारतमाता की पुकार' रसिक की 'खून के छींटे', अभिराम शर्मा की 'मुक्त संगीत', प्रह्लाद पाण्डेय शशि की 'तूफान' एवं 'विद्रोहिणी' रचनाओं में व्यक्त सत्य जब ब्रिटिश शासन को सहन नहीं हुआ तो इन समूची रचनाओं को प्रतिबंधित कर दिया गया। लोकमान्य तिलक को तो 14 सितम्बर, 1896 को डेढ़ वर्ष की कड़ी सजा सुना दी गई। उल्लेखनीय है कि भारत में तिलक की 'शिवाजी के उद्गार' कविता के प्रकाशन पर मिलनेवाली यह पहली सजा थी। लेकिन यह भी प्रमाणित है कि रचना में सत्य का प्रसारण पाठकों एवं जन–सामान्य को आकृष्ट करता है, एक वैचारिक जनमत तैयार करता है और रचनाकार भी चर्चित होता है। सलमानरुशदी 'सेटेनिक वर्सेज' (1988) एवं तसलीमा नसरीन 'लज्जा' (1993) के प्रकाशनोपरांत ही चर्चा में आए। रूस में सोल्जेनित्शान को उनकी सत्य रचनाधर्मिता के लिए देशनिकाला दिया गया।

एलेग्जेंडर कुमरीन के गुलाब द्वीप समूह पर आधारित लिखे गये उपन्यास में प्रतिपादित सत्य भी रूसी शासन को असहनीय था, जबकि इस उपन्यास में ज्यादातर आँकड़े ही हैं। आज भी चीन, बल्गारिया और दक्षिण अफ्रीकी देशों में राजनीतिक कट्टरवाद के कारण साहित्यिक कृतियों में व्यक्त सत्य बर्दाश्त नहीं होता।

लेकिन यह भी सही है कि सत्य को न तो इतनी आसानी से दरगुजर किया जा सकता है और न ही इसे सरलता से सुनिश्चित किया जा सकता है। दुनिया के सामने एक के बाद एक सभ्यतम राष्ट्र बर्बरता में जा गिरे। आज हर कोई जानता है कि रसायनिक युद्ध कभी भी इस हँसती, गाती, खेलती दुनिया को विनाश के खंडहरों में बदल सकता है। यह सत्य है और यदि सत्य किसी रचना में उद्घाटित होता है तो इसे उसी प्रकार स्वीकार करना चाहिए, जिस प्रकार हम इस सत्य को स्वीकृति प्रदान करते हैं कि कुर्सियों की सीटें होती हैं और बारिश ऊपर से नीचे की ओर ही गिरती है। कई रचनाकार इसी प्रकार का सत्य ही लिखते हैं। उनका विवेक स्पष्ट होता है और सबल उन्हें भ्रष्ट नहीं कर सकते हैं। कुर्सी को कुर्सी कहना सत्य है, बारिश को नीचे गिरने से कोई रोक नहीं सकता, शोषण और अन्याय के विरुद्ध आवाज बुलंद होती रहेगी, अत्याचार एवं वर्जनाओं के खिलाफ इस्पाती सत्य स्वरित होता रहेगा। यह भी सत्य है।

यह कहना भी निराधार नहीं है कि गरीबी के विरुद्ध संघर्ष करनेवाले और शासकों की परवाह न करनेवाले भी कई बार सत्य से दूर रहते हैं। दरअसल, उनमें सत्य जानने के ज्ञान का अभाव रहता है और वे पुराने अंधविश्वासों में फँसे रहते हैं एवं कुख्यात पूर्वाग्रहों से संचालित रहते हैं। उनके लिए संसार इसलिए जटिल है, क्योंकि वे तथ्यों से अनभिज्ञ होते हैं। नतीजतन वे मानवीय संबंधों को समझ नहीं सकते। इसीलिए आज के इस जटिल एवं त्वरित बदलते युग में प्रत्येक लेखक को अर्थव्यवस्था एवं इतिहास की भौतिकवादी द्वंद्वात्मकता का ज्ञान होना जरूरी है। कहने का प्रयोजन यह है कि यदि सत्य को खोजने एवं साहित्य में इसे संप्रेषित करने की प्रविधि सही है तो हर प्रकार के सत्य को खोजा और प्रसारित किया जा सकता है। गैलेलियो, कार्लमार्क्स, आईन्स्टीन, खलील जिब्रान और गाँधी के सत्य को जितना दबाया गया, उतना ही वह ज्यादा फैला। इसका कारण यह रहा कि इनका सत्य परिणामोन्मुख था तथा इसमें हानिप्रद स्थितियों के निवारण के उपायों की पहचान थी।

साहित्यकार में इस बात की भी निर्णयशक्ति होनी चाहिए कि उसकी रचनाओं का सत्य किन लोगों के हाथों में प्रभावी रह सकता है। ऐलिजाबेथ बैरेट बाऊनिंग की कविता 'द कराई ऑफ चिल्ड्रन' ने रानी विक्टोरिया को अंदर तक पिघला दिया था और नतीजे के तौर पर काले धुएँवाली फैक्टरियों में कम आयु के काम करनेवाले बच्चों को शोषण से मुक्ति मिली। साफ है कि संदर्भित कविता में अभिव्यक्त सत्य एक विशिष्ट उद्देश्य एवं विशिष्ट बच्चों के लिए था। मत भूलिए कि अच्छी चीजें सुनने में भी अच्छी लगती हैं, अतः इन अच्छी चीजों को सुनना चाहिए। सत्य भी विवेकशीलता से बोला जाना चाहिए, सुना जाना चाहिए और लिखा भी जाना चाहिए। इस संदर्भ में एलेग्जेंडर पोप की 'द रेप ऑफ द लॉक' जोनाथन स्विफ्ट की 'द बैटल ऑफ बुक्स', टी.एस. इलियट की 'द वेस्ट लैंड' एवं निराला की 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षु' एवं 'कुकुरमुत्ता' रचनाओं में शंखनादित सत्य को देखा जा सकता है।

विश्व इतिहास इस बात का गवाह है कि जहाँ सत्य को दबाने या छुपाने का प्रयास किया गया है, वहाँ सत्य को चतुराई एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रसारित किया गया है। कन्फ्यूशियस ने पुराने, देशभक्तिपूर्ण ऐतिहासिक पंचांग का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया। उसने कुछ विशिष्ट शब्दों को बदल दिया। पंचांग में लिखा है–'हूण शासक ने 'वान' नामक दार्शनिक को मार दिया, क्योंकि उसने कुछ गलत कहा था। लेकिन कन्फ्यूशियस ने 'मार दिया गया' शब्दों की जगह 'हत्या की गई' लिख दिया। इस प्रकार तत्कालीन तानाशाही एवं उसके तले एवजी को दी गई फाँसी के संदर्भ में कन्फ्यूशियस ने इतिहास की नई व्याख्या का मार्ग खोल दिया। जहाँ अत्याचार या दमन फैला हुआ हो, तो ऐसे परिवेश में 'आज्ञाकारिता' शब्द का प्रयोग उचित है न कि 'अनुशासन', क्योंकि अनुशासन स्वयं द्वारा नियंत्रण है, एक प्रकार का आत्म– नियंत्रण है। इसमें चारित्रिक उदारता है, जो आज्ञाकारिता में नहीं है। इसी प्रकार 'सम्मान' शब्द के स्थान पर 'मानव प्रतिष्ठा' शब्द बेहतर लगता है। निस्संदेह, कन्फ्यूशियस की चतुराई आज भी वैध है, तर्कसंगत है। अपनी रचनाओं में सत्य का उद्घाटन करने के लिए रचनाकार में यह चतुराई भी होनी चाहिए।

रूसी साहित्य के एक पन्ने से पता चलता है कि लेनिन, साखालिन द्वीप में हो रहे शोषण एवं अत्याचार पर लिखना चाहता था। लेकिन जार पुलिस से सतर्क रहना उसके लिए जरूरी था। उसने 'रूस' के स्थान पर 'जापान' और 'साखालिन' के स्थान पर 'कोरिया' शब्द का प्रयोग किया। परन्तु उसके पाठकों को यह समझने में देर नहीं लगी कि जापानी बुर्जुआ प्रणाली रूसी एवं सखालिन बुर्जुआ प्रणाली की तरह ही है। दिलचस्प है कि इस पुस्तक को दोषी नहीं ठहराया गया, क्योंकि रूस, जापान का विरोधी था। जाहिर है कि जर्मनी में रहते हुए जर्मनी के बारे में बहुत–सी बातें नहीं की जा सकतीं, लेकिन आस्ट्रेलिया के बारे में कही जा सकती हैं। अतः लेखकीय चतुराई की कई युक्तियाँ हैं, जिनके जरिए संदिग्ध राज्य की आँखों में धूल झोंकी जा सकती है।

एक अन्य संदर्भ भी साक्षी है कि वाल्टेयर ने 'मेड ऑफ ऑरलियन्स' के बारे में एक भव्य एवं शृंगारिक कविता लिखकर चर्च के चमत्कारी सिद्धांत का विरोध किया था। उसने उन चमत्कारों का इस विश्वसनीयता से वर्णन किया कि सैनिकों, अभिजात न्यायालय एवं मठवासियों के अतिथेय के मध्य 'जॉन ऑफ आर्क' कुँवारी ही लगे। उसने अपने शैली–लालित्य एवं कामोद्दीपक साहसी कार्यों द्वारा जैसा कि शासक वर्ग के विलासमय जीवन का वर्णन होता है, धर्म को बदनाम कर दिया, जिसकी छाया में वे निर्बन्ध एवं स्वच्छंद जीवन व्यतीत करते थे। स्पष्ट है कि अपनी रचनाओं में वाल्टेयर लक्षित लोगों पर अपना निशाना दाग गया। महान लुक्रिटियस का कहना है कि एपिक्यूरियन नास्तिकता के प्रोत्साहन एवं प्रचार–प्रसार में काव्य–सौंदर्य का बहुत बड़ा हाथ था।

साहित्य में सत्य को लोगों में प्रसारित करने की चतुराई के कई संदर्भ विलियम शेक्सपियर, जोनाथन, स्विफ्ट जैसे रचनाकारों की रचनाओं में प्रायः मिलते हैं। विलियम शेक्सपियर के 'कोरियोलेन्स' नाटक के एक दृश्य में कोरियोलेन्स अपने बेटे के सामने खड़ी है, जो अपने मूल शहर को जा रहा है। इस दौरान शेक्सपियर ने कोरियोलेन्स के संवाद को जान–बूझकर कमजोर बनाया है। उसने माँ–बेटे के दरम्यान उपस्थित सत्य को बड़ी चतुराई से प्रसारित किया है। एक अन्य नाटक 'जूलियस सीजर' में सीजर के मृतक शरीर पर एन्टनी के भाषण द्वारा उसने कहलावा दिया कि बूटस एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है। साथ ही उसने उसके कृत्य का भी वर्णन कर दिया। कृत्य का यह वर्णन सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं प्रभावी है। जोनाथन स्विफ्ट ने अपनी एक प्रसिद्ध पुस्तक में सुझाव दिया है कि इंग्लैंड की समृद्धि को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए निर्धन लोगों के बच्चों का वध कर दिया जाए और उन्हें मीट के लिए बेच दिया जाए। यदि शासकवर्ग ने ऐसा नहीं किया तो अर्थव्यवस्था प्रभावित हो सकती है। भोलेपन का बहाना करके स्विफ्ट ने सोच के एक ऐसे ढंग का समर्थन किया, जिससे वह सर्वाधिक नफरत करता था। वैसे भी यह एक प्रकार से निर्दयता की सोच थी। लेकिन यह भी सही है कि यदि अधिप्रचार सोच को उत्तेजित करता है तो शोषितों की भलाई के लिए यह कारगर सिद्ध होगा।

तकरीबन चार हजार वर्ष पहले मिस्र के एक कवि ने भी सत्य का प्रसार करने के लिए चतुराई बरती थी। उस समय मिस्र में जबर्दस्ती वर्गसंघर्ष चल रहा था। शासक अपने विरोधियों से बड़ी मुश्किल से बचाव कर पा रहा था। कवि ने एक लंबी कविता लिखी, जिसमें एक बुद्धिमान व्यक्ति शासक के न्यायालय में पहुँचता है और आंतरिक शत्रु के विरुद्ध संघर्ष के लिए शासक को उत्साहित करता है। उसने राज्य में फैली अव्यवस्था एवं गड़बड़ी का इतना प्रभावी वर्णन प्रस्तुत किया, जो निम्न वर्ग के कारण उत्पन्न हुआ था। दरअसल, यह गड़बड़ी शासक की गलत नीतियों के कारण ही फैली थी। कहना न होगा कि सही सोच ही कालान्तर में मार्ग प्रशस्त करती है।

इसमें मतैक्य है कि 'विचार' कभी नष्ट न होनेवाली एक ऊर्जा इकाई है। वेदों, उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता एवं साहित्यिक व आध्यात्मिक कृतियों में व्यक्त विचार को आज तक कोई मार नहीं सका है। विचार का संपादन, परिवर्धन, संशोधन और नवीनीकरण अवश्य होता रहा है। जहाँ विचार है, वहाँ सत्य है। जहाँ सत्य–विचार है, वहाँ रचनाकार है और उसकी रचना भी है। सही रचना तो सत्य ही प्रसारित करेगी, क्योंकि इसका रचनाकार सत्य का अन्वेषी है। यथास्थिति में रहनेवाले लोग तो विरोध करेंगे ही। नये सिद्धांतों एवं नये सत्यों के कारण समाज में जो उथल– पुथल होती है, उसका भी सामना साहित्यकार को करना पड़ता है। यदि एक जगह उसका साहित्य प्रतिबंधित होगा, तो दूसरी जगह उसे पढ़ा जाएगा। 'सेटेनिक वर्सेज' और 'लज्जा' को आज भी पढ़नेवाले लोग मिल जाएँगे। सत्य को उद्घाटित करने के लिए सच्चा साहित्यकार वर्जनाओं पर प्रहार करेगा। शेरों के जीवन पर लिखने के लिए यह जोखिम उठाकर शेरों के बीच भी जाएगा।

यदि साहित्यकार समाज के लिए है तो समाज द्वारा उसे सुरक्षण मिलना ही चाहिए। तत्कालीन समाज ईसा मसीह, सुकरात, गैलेलियो, मंसूर हल्लाज, सरमद, गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर आदि विभूतियों को सुरक्षित नहीं रख पाया था। लेकिन आज का समाज जागरुक है और वह समझने लगा है कि पुस्तक जैसी नैतिक अथवा अनैतिक कोई चीज नहीं होती है। साहित्यकार कितना चल सकता है, यह निश्चित रूप से समाज की सुरक्षा पर निर्भर करता है। साहित्यकार के सत्य एवं नये विचार के पक्ष में जितना समाज रहता है, उतना ही उसे सुरक्षण मिलता है। उन्माद और जुनून सदैव साहित्यकार की संघर्ष–चेतना को दंडित करते रहते हैं। अतः आज के परिप्रेक्ष्य में यदि धार्मिक वर्जनाओं का उदारीकरण होता है, सत्ता न्याय का रक्षक बनती है और सामाजिक निर्णयों में साहित्यकार की सहभागिता रहती है, तो सत्य प्रसारण में उसके अस्तित्व को न तो कोई खतरा होगा और न ही उसकी रचनाधर्मिता को अवैध करार दिया जाएगा। साहित्य के स्वस्थ विकास के लिए यह जरूरी भी है।

आलेख :

बेमोल नहीं, अनमोल बेटियाँ

नाजरीन अंसारी

बेटियों की दास्ताँ कैसे बयाँ करूँ मैं! तुम एक फूल की तरह प्यारी और खूबसूरत हो। सदियों से लोग तुम्हारा अपमान करते आ रहे थे। जब पहले की बातें सुनती हूँ तो मन अत्यन्त दुःख के सागर में डूब जाता है। जब बेटियों को पैदा होते ही मिट्टी में दफन कर दिया जाता था। बेटियों के पैदा होने पर घर में मातम छा जाता था। कितने पुरुष तो दूसरा विवाह तक कर लेते थे। नासमझ लोग सारा दोष स्त्री के सर पर मढ़ दिया करते थे और खुद को न जाने कहाँ के तीसमारखाँ समझते थे। उस समय में बेटी को पैदा होना ही अभिशाप था। ना जाने कितने अत्याचार सहन करती रही है। उनके कष्टों की सूची बहुत लंबी है और बहुत दुखदाई भी, क्यों बेटियों का इतना अनादर, इतनी अवहेलना, इतना तुच्छपना होता रहा, जिसके बिना सृष्टि की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उसका ऐसा तिरस्कार, ऐसी मानवीयता, ऐसी अभद्रता क्यों, आखिर क्यों होती रही ?सदियों से यह सब स्त्रियों के साथ ही क्यों ?पुरुषों के साथ क्यों नहीं ?समझ में नहीं आता स्त्रियों से ही इतना वैर क्यों रहा लोगों को ?स्त्रियाँ ही क्यों दुराचार सहती रहीं, उनकी तकलीफ को क्यों कोई महसूस नहीं करता था ?क्यों देखकर लोग अनदेखा करते रहे ?क्या वह इंसान नहीं है या उस समय स्त्रियों को इंसान समझा ही नहीं जाता था। आज भी बहुत लोग हैं, जो बेटी हो तो गर्भपात करवा देते थे। बहुत से ऐसे लोग हैं जो बेटा–बेटी में फर्क करते हैं। मेरी समझ में तो यह नहीं आता है कि यह फर्क करनेवाले लोग क्या समझते हैं, क्यों बेटी को कम आँकने में लगे रहते हैं, जबकि बेटियाँ कहीं–कहीं तो बेटों से भी ज्यादा अपनी जिम्मेदारियाँ निभाती हैं। ससुराल की तो करती ही हैं, लेकिन मायके में भी अपने माता–पिता का हर तरह से सहयोग करती है। उनकी हर परेशानी के साथ खड़ी होती है। अपना दायित्व निभाने में एक पल भी पीछे नहीं हटती। खैर समय बदला, बहुत बदल गया, आज हमारे समाज में बेटियाँ का बहुत ऊँचा स्थान है। समाज में तो है ही, क्योंकि सबसे पहले उसके परिवार में उसका बहुत महत्व है। अब तो बेटियाँ ही घर की शान है, अपने परिवार का गौरव है। हर क्षेत्र में आगे आ रही हैं और लगातार आगे बढ़ रही हैं। ऐसा कोई काम नहीं है, जो बेटियाँ नहीं कर सकतीं। वह कर रही है, हर नामुमकिन को मुमकिन बना रही है। किसी भी क्षेत्र में वह जो भी काम कर रही है, उसमें वह पूरी तरह सक्षम है और सुदृढ़ भी। बेटियों को धूल समझनेवाले बेटियाँ तो एक फूल है। उसकी खुशबू से सारा वातावरण महक रहा है। वह गुणों की खान है, हम सबका अभिमान है, दिवाली की जगमगाती दीप हैं बेटियाँ, होली के सारे रंगों की रंगोली है बेटियाँ, रक्षाबंधन में भाई की प्रतीक हैं बेटियाँ, करवा चौथ में पति का वरदान हैं, माँ–बाप के आँगन की उपहार है बेटियाँ, हर रंग में, हर रीत में सराबोर है बेटियाँ, बेटियाँ तो वह कोहिनूर है, जिसकी चमक से सारा आलम जगमगा रहा है। बेटियाँ दौड़ रही हैं और छलांग लगा रही हैं। उनके अंदर हौसलों की उड़ान है, जुनून का अंबार है, वह तो अपना परचम लहराएगी, रास्ते के पत्थर को हटा देगी, पैरों के छाले को मिटा देगी, पर्वत भी लाँघ जाएगी और लहरों से भी खेल जाएगी। उनके मन में अनगिनत शोर है, कुछ कर जाएँगे, कुछ पा लेंगे, हम बेटियाँ हैं शक्तिशाली, ऐसा अहसास सबको करा देंगे। आज जब बेटियों को ऐसे चहकते देखती हूँ, तो मन खुशी से झूम जाता है। आज बेटियाँ स्वतंत्र हैं, अपने पंखों को फैलाए खुले आकाश में उड़ रही हैं। उन्मुक्त हैं हर पिछड़ी सोच में, जागरुक हैं हर दबी कमजोरी से, सम्मान से और गर्व से भारवान हैं बेटियाँ।

कहानी

कैसे हो चंदन

अंजना वर्मा
102, रोहण इच्छा अपार्टमेंट
भोगनहल्ली, बैंगलुरू
मो. 8210777500

सबने तैयारी शुरू कर दी थी; क्योंकि इस खबर से चारो ओर सनसनी फैल गयी थी कि लॉकडाउन शुरू होनेवाला है, जिसके बाद सारा बाजार, सारी दुकानें बंद हो जाएँगी। वाहनों का आवागमन ठप्प होने से बाहर से माल आना बंद हो जाएगा और तब चारों ओर दैनिक सामानों की घोर किल्लत हो जाएगी। व्यापारी लोग कालाबाजारी शुरू कर देंगे। इसीलिए जितना सामान खरीद सकते हैं, उतना खरीदकर रख लो। न जाने कैसा समय आए?बाद में पछताने से तो अच्छा है कि अभी पूरा संग्रह कर लो। मोबाइल से लोग अपने आत्मीय–परिजन को सचेत करने लगे और सुनकर खौफज़दा हुए लोग सामान बटोरने में लग गए। जो जितना खरीद सकता था, उसने उतना जमा करके रख लिया। दो–चार दिनों के भीतर ही किराना दुकानों से दैनिक चीजों की इतनी बिक्री हुई कि सचमुच दुकानदारों ने अनाज–पानी के दाम बढ़ा दिये। उसकी चीज को जिसने बाद में खरीदा, उसने अधिक दाम देकर खरीदा। व्यापारी भी सोच रहे थे कि अब तो व्यापार डूबनेवाला है। कल कमाई न हो सकेगी, तो आज जितना कमा सकते हो कमा लो।

अभिनव और ऋचा भी ऐसी बातें सुनकर घबरा गये, जिनको अपनी दो साल की लाडली बिटिया सिया की अधिक चिंता थी। इस बंदी के दौरान उसकी चीजें सबसे पहले खरीदकर रख लेना जरूरी था कि उसे कोई दिक्कत न हो। इसीलिए उनकी फेहरिस्त में सबसे ऊपर था सिया का सामान। दोनों ने घबराकर चार–पाँच महीने के लिए दूध के डब्बे और राशन घर में जमा करके रख लिया। कल न जाने क्या हो?उनकी जिंदगी में ऐसा संकट का समय अबतक नहीं आया था, न ही उन्होंने बुजुर्गों के मुँह से कभी ऐसा इतिहास सुना था। अभिनव बार–बार ऋचा को कहता–''ऋचा! याद कर लो। जरूरत का सामान जितना भी हो, अभी मँगवा लो। सिया के लिए डायपर, दूध के डिब्बे वगैरह तो आ चुके थे। यदि बेबी के लिए तुम्हें और कुछ याद आ रहा है, तो अभी बोलो। लॉकडाउन खत्म होने के बाद फालतू सामान को फेंक देना अच्छा है, बजाय इसके कि हमें किसी चीज की दिक्कत उठानी पड़े।''

ऋचा ने सोचते हुए कहा, ''मुझे तो लगता है कि हमने सब कुछ इकट्ठा कर लिया है। किराना का सारा सामान हो गया और रोजाना जरूरत की चीजें भी पूरी हो गयीं। सिया का सामान तो खैर आ ही चुका है। अब ज्यादा फिक्र न करो। हमलोगों को कोई दिक्कत नहीं होगी, बल्कि बहुत सारी चीजें लॉकडाउन खत्म होने के बाद भी चलेंगी।''

तो बेबी फूड और इसके साथ–साथ हींग से हल्दी तक और सबसे ऊपर हाथ धोने का तरल साबुन और सैनेटाइजर की पाँच लीटर की पैकिंग घर में जमा करके रख ली गयी। सारी सामग्री जमा करने के बाद दोनों पूरी तरह निश्चित हो गये कि चलो, अब तो कई महीनों तक के लिए किसी चीज की कमी नहीं होगी।

जबसे लॉकडाउन शुरू हुआ, तबसे शहर का नक्शा ही बदल गया। एक दिन में ही क्या से क्या हो गया?हर जगह सन्नाटा छा गया। कल तक तो शहर की भीड़ और सड़क की जाम से सब परेशान थे। अब अचानक सड़क पर से वाहन और भीड़–भाड़ गायब हो जाने और दुकानों के शटर बंद रहने से सारा शहर श्मशान–सा वीरान दिखाई देने लगा। सारे लोग कहाँ गायब हो गये?अच्छी–खासी आबादीवाला महानगर जनशून्य दिखाई देने लगा था। धूल उड़ाती निस्तब्ध सड़कों पर दिन–दहाड़े निकलने में भी डर लगता था, जैसे कोरोना का अदृश्य प्रेत आकर दबोच लेगा। सबका बाहर निकलना बंद हो गया। अपार्टमेंट में स्विमिंग पुल से लेकर पार्क और ड्राइव वे तक में एक इंसान नजर नहीं आता था–एक सूनी और निःशब्द दुनिया।

सूरज तो अपने नियत समय से उगता था, लेकिन न कोई सुबह की सैर और योगा के लिए निकलता, न ही पार्क से बच्चों का शोर सुनाई देता। दिन में भी रात की खामोशी पसरी रहती थी। हर मनुष्य आतंकित होकर जैसे खोह में निवास कर रहा था। ऋचा और अभिनव ने अपनी बालकनी से झाँककर जब यह नजारा देखा तो वे सचमुच सहम गये। बच्चों के जिस पार्क में बच्चों की किलकारी गूँजती थी, उसी पार्क के लिए झूले, हाथी और फिसलपट्टी बच्चों की अनुपस्थिति से उदास पड़े थे।

कई दिनों तक वे सब सहमे–सहमे रहे। लग रहा था जैसे कोई प्रलय आनेवाला हो, पर धीरे–धीरे इस अटूट खामोशी और मनहूसियत में भी सबको जीने की आदत पड़ गई। वे सब इस नीरवता को अपनी बातचीत और हलचल से तोड़ने लगे। सिया की शरारत संकटकाल की दवा बन गई थी, जिससे इस भय के मौसम में भी उनकी जिंदगी अपनी रफ्तार पकड़ने लगी। दोनों का समय उसके साथ बोलते और खेलते हुए आराम से बीतने लगा।

अभिनव अपनी मीटिंग का काम एक ओर करके अभी–अभी अपने लेपटॉप की जकड़ से मुक्त होकर कमरे से बाहर आकर सिया को गोद में लिये बैठा था। इस संकटकाल में ऑफिस का काम तो खत्म नहीं हुआ था, लेकिन घर से ऑन लाइन करते रहने से उसे बहुत सहूलियत हो गयी थी। भाग–दौड़ तो बिल्कुल ही खत्म हो गयी थी और इसके साथ ही समय की खींचातानी भी बंद हो गयी थी। अब आराम से घर बैठे ऑफिस का काम करते रहो और उससे छूटो तो सीधे परिवार के बीच जम जाओ। पहले वह सिया के साथ हँसने–बोलने के लिए तरस जाता था। केवल सप्ताहांत में ही बच्ची को गोद लेकर खेलाने का मौका मिलता था। पर अब बात बिल्कुल ही अलग थी। शादी के वर्षों बाद बीवी–बच्चों के साहचर्य–संपर्क से उसे पारिवारिक संबंधों की मिठास का एहसास हो रहा था।

ऋचा को भी ऐसा लग रहा था। इधर मुश्किल समय में भी उनके दिन–रात आपस में बातचीत और प्रेम–मोहब्बत में गुजरते जा रहे थे, जिसकी कल्पना भी उन दोनों ने नहीं की थी। हालाँकि कोविड की भयंकर खबरों से मन चिंताकुल हो जाता था। पर दिल ही दिल में सबकी सलामती की प्रार्थना करती हुई वह क्रूर वक्त की मेहरबानी पर हैरान थी।

अभिनव को इत्मीनान से बैठे हुए देखकर वह दो कपों में चाय बनाकर ले आयी। प्यालों को देखते ही अभिनव के चेहरे पर मुस्कान आ गई और उसने कप के लिए हाथ बढ़ा दिया। दोनों साथ बैठकर चाय पीने लगे तो अभिनव ने मुस्कुराते हुए कहा–'इस लॉकडाउन में तुम्हें कैसा लग रहा है, ऋचा!'

भीतर का सच तो यह है कि बहुत डर लग रहा है, अभिनव!जैसे सारी की सारी दुनिया बदल गई हो। ये वो दुनिया नहीं है, जिसमें हम अबतक जीते आए हैं। एक अनजानी ही दुनिया है ये। एकाएक पड़ोसी भी कितनी दूर हो गये कि एक दूसरे के यहाँ जा नहीं सकते हैं। एक दूसरे से अपना हाल–चाल नहीं कह सकते। बाहर कोई दिखाई नहीं देता। चारों ओर कैसा भयंकर सन्नाटा पसरा हुआ। क्या होगा अब?

''अच्छा उन बातों को छोड़ो। डरो मत। सब ठीक होगा। यह बताओ

कि पहले तुम कहा करती थी कि मैं समय नहीं देता हूँ तुम्हें। रोज–रोज का यही रोना था तुम्हारा। पर अब?अब तो सारे दिन और सारी रात के लिए यह बंदा हाजिर है तुम्हारी खिदमत में। बस हुकुम तो करो।''

यह सुनकर ऋचा हँसने लगी। बोली–''हाँ! ज्यादा होशियार न बनो। यह समय तुम मुझे नहीं दे रहे हो। ये तो लॉकडाउन की वजह से मिल रहा है। भले ही सबके ऊपर मौत मँडरा रही है, लेकिन एक फायदा तो हुआ है हम जैसी तमाम हाउसवाइफों के लिए सबके पति उनके साथ समय बिताने लगे हैं। सब खूब खुश हैं।''

''तुम कैसे जानती हो कि सब खुश हैं?''

''फोन पर बातें नहीं होती है क्या?सब अपनी–अपनी बातें बताती हैं। देवयानी अकेली रहती हुई कितना परेशान रहती थी?सब कुछ उसी को करना पड़ता था। ऑफिस भी, घर का काम भी। पर अब श्रीधर उसके पास चला आया है। वर्क फ्रॉम होम कर रहा है। मजा ही मजा है उसे। हर क्षेत्र के लोग तो घर बैठे ही काम कर रहे हैं। कनिका और उसके बच्चे भी खूब खुश हैं। बच्चों को स्कूल जाना नहीं पड़ रहा है। घर बैठे क्लास कर रहे हैं। हाँ, कहीं–कहीं माँएँ इस बात से परेशान हो रही है कि पहले बच्चे स्कूल जाया करते थे, तो थोड़ी फुर्सत मिलती थी उन्हें। अब नहीं जाते हैं तो उनका दिमाग खाते हैं और उनको नींद में खलल पड़ती है। लेकिन ये सब बेकार की बातें हैं।''

''पर ये भी तो सोचो ऋचा कि हम कितने खतरनाक समय से गुजर रहे हैं?... तुम्हें इस भयंकर बीमारी से डर नहीं लगता?किस तरह लोग खत्म हो रहे हैं। यह ऐसी बीमारी है जिसकी कोई दवा भी नहीं बनी है अबतक। यहाँ तक कि वैक्सीन भी अभी तैयार नहीं हो रही है।''

''डर तो है अभिनव! रह–रहकर रूह काँप जाती है। पर डरकर क्या करें हम?डर के साये में ही तो बूँद भर खुशी मिल रही है हमें। ज्यादा डर या चिंता से तो वह भी काफूर हो जाएगी। और सरकार जो नियम पालन करने के लिए कह रही है, वह तो हम कर ही रहे हैं। इससे ज्यादा हम कर भी क्या सकते हैं?कल के लिए डरते–डरते हम आज की खुशियों को भी अपने हाथ से क्यों जाने दें?अगर मिलने–जुलने से ही यह बीमारी फैलती है तो हम घर में बंद होकर जी रहे हैं, बाहर तो नहीं निकल रहे। और हम क्या करें?''–ऋचा बोली

''हूँ...वो बात तो है।'' अभिनव ने कुछ सोचते हुए कहा।

पुनः अभिनव ने कहा–''चलो, कुछ महीनों के लिए राशन मँगवाने के काम से हम छुटकारा पा गये।''

''ऐसे कैसे छुटकारा मिल सकता है?अभिनव! क्या सब्जी भी छः महीने के लिए खरीदकर रख ली है हमने?और रोज–रोज कुछ न कुछ तो मँगवाने की जरूरत सामने आ ही जाती है। लेकिन इस आफत काल में कोई क्या करे?जितना है वह बहुत है। बाहर निकलकर कोई खतरा मोल नहीं लेना है हमें।''

अभिनव ने कहा–''नहीं, और जो जरूरत हो तुम्हें, वह ऑन लाइन ऑर्डर कर लो। आ जाएगा।''

''हाँ, कर लूँगी। बस वही रोज के फल, दूध और सब्जियाँ और क्या?''

ऋचा ने जल्दी–जल्दी मोबाइल पर सामान ऑर्डर किये और कुछ ही घंटों में कॉल बेल बज उठी। सामान आया होगा, यह सोचकर अभिनव ने नाक पर मास्क लगाया और आधा दरवाजा खोलकर झाँका। देखा कि एक मास्कधारी बड़ा–सा थैला लिये बाहर खड़ा था।

अभिनव ने कहा–''वहीं रख दो।''

वह व्यक्ति वहीं दरवाजे पर सामान रखकर जैसे आया था, उसी तरह फौरन लौट गया।

अभिनव ने ऋचा से कहा–''तुमने जो सामान ऑर्डर किया था, वह आ गया है।''

ऋचा ने कहा–''हाँ आ गया। लेकिन ये लोग कौन हैं, जो इस आफत में भी दरवाजे–दरवाजे जाकर सामान पहुँचा रहे हैं?इन्हें अपने प्राणों का डर नहीं?''

''ये वे लोग हैं, जो एक दिन काम न करें तो उनके घर में चूल्हा न जले। दाना–पानी बंद हो जाए। तो क्या करेंगे ये लोग?इस मुश्किल समय में भी जान हथेली पर रखकर, सिर पर कफन बाँधकर इन्हें निकलना पड़ रहा है। कितने लोग ऐसे हैं, जिनकी नौकरियाँ छूट गयी हैं। वे डिलीवरी ब्वॉय का काम रहे हैं। बेचारे...किस्मत के मारे हैं।''

''सच! और उसका फायदा हमें मिल रहा है''–ऋचा ने कहा।

''हाँ, और क्या?यही दुनिया है''–कहकर अभिनव ने मुँह बना लिया।

थोड़ी देर बाद उसने कहा–''अच्छा, अब बताओ कि आज लंच में क्या बन रहा है?''

''तुम जो कहो, बना दूँ। मटन बिरयानी खाओगे क्या?''

''हाँ, वही बना दो।''

''लाओ, प्याज काट दूँ। तुम्हें आँखों में बहुत लगता है।''

''नहीं, अब तो मेरी आदत पड़ चुकी है। तुम छोड़ दो। बस, सिया को देखते रहो। बहुत शैतान हो गयी है आजकल।''

अब ऋचा अपना अधिक ध्यान किचन में देने लगी थी, क्योंकि अब उसके पास समय ही समय था और उसके हर काम में सहायता करने के लिए अभिनव भी मौजूद रहता था। रोज नये–नये पकवान घर में बनते और शौक से खाया जाता। केवल एक ऋचा ही नहीं, बल्कि उसकी सभी सहेलियों का यही किस्सा हो चला था। सबके घर में नित नये व्यंजन बन रहे थे। तरह–तरह के व्यंजन बनाकर उन्हें फेसबुक या व्हाटसप पर डालनेवाले भी लोग थे। जब दिनभर घर में ही रहना था तो खाने के अतिरिक्त मनोरंजन का कोई दूसरा साधन उसे सूझता ही न था। कभी–कभी इस भय के माहौल में भी ऋचा सोचने लगती थी कि यह संकटकाल है या स्वर्णकाल?घर के बाहर जो भी भयावहता हो, घर के भीतर का माहौल तो ठीक उसका उलटा था। जिसके घर में जितने अधिक सदस्य थे, उसके घर में उतनी चहल–पहल बनी हुई थी। बोलना, गप्प करना, खाना–पीना सब चल रहा था, जैसे पुराना जमाना लौट आया हो। पर जब वह इस वैश्विक महामारी के बारे में सोचने लगती तो भीतर तक सिहर जाती। न जाने कब क्या हो जाए?मृत्यु कब झपट्टा मार दे?जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं।

घर में रहते–रहते तीनों अकुला उठे थे। यहाँ तक कि सिया भी लगातार रोती ही चली जाती और तबतक चुप न होती, जबतक अभिनव उसे बालकनी में ले जाकर बच्चों का पार्क न दिखा देता–सूना ही सही और थोड़ी हवा न खिला देता। लेकिन ऐसा करते हुए भी अभिनव डरता था। लगता कि कहीं हवा में ही तो कोरोना के विषाणु नहीं घुले हुए हैं?न जाने कब कौन संक्रमित हो जाए!

घर में बंद रहते हुए ऊबकर एक दिन ऋचा ने कहा, ''कहीं हम बाहर घूमने नहीं चल सकते हैं, अभिनव! घर में बंद रहते–रहते डिप्रेशन–सा होने लगा है। कुछ तो करो।''

''हमें अपनी सुरक्षा का ध्यान भी तो रखना चाहिए, ऋचा?हमारे साथ छोटी बच्ची है। सिया को लेकर हम कैसे बाहर जाएँगे?और किस तरह होटल में ठहर सकेंगे?हर जगह तो बीमारी का खतरा बना हुआ है। अभी कहीं जाना सही नहीं रहेगा।''

फिर ऋचा चुप हो गई तो अभिनव ने कहा–''हाँ, हम एक काम कर सकते हैं। गाड़ी से कहीं घूमने चल सकते हैं। एक लंबा ड्राइव लेकर चले आएँगे। किसी से मिलना–जुलना बिल्कुल नहीं होगा। बस हरी–भरी प्रकृति को निहारेंगे और लौट आएँगे।''

मचलकर ऋचा ने कहा–''हाँ, तो वही करो न! आज हम सभी शाम को ड्राइव पर चलते हैं। शहर से दूर जाकर कहीं घूमेंगे फिरेंगे।''

उस दिन अभिनव और ऋचा सिया के साथ शहर से दूर एक लंबे ड्राइव पर निकले। एक निर्जन जगह में पहुँचकर अभिनव ने गाड़ी रोक दी और तीनों गाड़ी से बाहर निकलकर बड़ी देर तक निर्जन हरियाली में घूमते रहे। ठंढी हवा में लंबी–लंबी साँसें लेते रहे। सिया के खुशी का ठिकाना नहीं था। वह हरी घास पर खूब दौड़ रही थी। दौड़कर कभी अभिनव के पास जाती तो कभी ऋचा के पास। जब वे सब चलने के लिए तैयार हुए तो वह गाड़ी में बैठने से मना कर रही थी। किसी–किसी तरह फुसलाकर उसे वापस चलने के लिए राजी कराया गया।

घर पहुँचकर अभिनव ने ऋचा से कहा–''चलो, अब मैं डिनर में पास्ता बनाता हूँ। बाहर की सारी दुकानें बंद है। रेस्तराँ बंद है। आदमी जाए तो कहाँ जाए?एक दिन समोसे भी बनाने हैं, जो हम दोनों मिलाकर बना लेंगे।

अभिनव ने ऋचा की ओर देखते हुए कहा–''क्यों, तुम कुछ बोल नहीं रही हो?''

ऋचा ने कहा–''ठीक तो है। और घर में बैठे–बैठे करें भी तो क्या करें?आज ही देवयानी ने व्हाटसप पर गुलाबजामुन की तस्वीर भेजी है। उसे गुलाबजामुन की रेसिपी मैंने ही बताई थी।''

अभिनव ने कहा–''तुम और तुम्हारी सहेलियाँ भी खूब है। तुमने अपनी मटन बिरयानी की फोटो क्यों नहीं भेज दी?''

''भेज देती तो अच्छा ही होता। पर मैं इतना शेयर नहीं करती। और कौन करे यह सब?क्यों?''

कोविड की दूसरी लहर उठने के पहले ही अभिनव के सारे दोस्त अपने–अपने गाँव–घर चले गये और वहीं से ऑफिस का काम करने लगे। यह देखकर अभिनव के भी मन में आया कि वह भी अपने घर चला जाए। जब घर से ही ऑनलाइन काम करना है तो क्यों न अपने शहर में ही रहकर करें?अत: कोविड का प्रकोप कम होते ही अभिनव भी मौका देखकर महानगर छोड़ अपने पैतृक शहर चला आया, जहाँ पिता का बनाया हुआ बड़ा घर और बगीचा था। उसने सोचा कि वहाँ जाने से अकेले रहते हुए माँ–पापा को भी उनका साथ मिल जाएगा, साथ ही वे इस भयंकर समय में अधिक सुरक्षित भी महसूस करेंगे। यही हुआ। अभिनव के आने से उसके माता–पिता को अप्रत्याशित खुशी मिली और उन्हें यह एहसास भी हुआ कि उनका बेटा उनकी सुरक्षा के लिए चिंतित है। अभिनव को सपरिवार घर आया देखकर उनके माता–पिता के जर्द झुर्रीदार चेहरे खुशी की रोशनी से नहा गये। पिता ने तो सिया को देखते ही गोद में उठा लिया। बेटा–बहू चरण छूने लगे तो माँ आशीर्वाद के फूल बरसाती हुई गले लगाने लगीं।

एक दिन शाम को बंदी टूटी तो अभिनव के मन में आया कि क्यों न बाहर जाकर थोड़ा अपने शहर का हाल–चाल लिया जाए?यही सोचकर अभिनव ने कहा–''सुनो, मैं दस मिनट के लिए बाहर निकल रहा हूँ। चौराहे तक का एक चक्कर लगाकर लौटता हूँ। इतने दिनों पर घर लौटा हूँ। जरा घूमने का मन हो रहा है। देखता हूँ क्या–क्या बदलाव हुए हैं। माना कि समय ठीक नहीं है, फिर भी थोड़ी चहलकदमी कर लेने में कोई हर्ज नहीं।''

''नहीं, मत जाओ अभिनव! मुझे डर लगता है। पता नहीं क्या हो जाए। पैदल सड़क पर घूमना तो बिल्कुल ही सही नहीं है। ऐसे समय में घूमने से ज्यादा जरूरी है अपनी जान की परवाह करना।''

अभिनव की माँ ने भी मना किया, लेकिन अभिनव ने कहा–''कुछ नहीं होगा। तुम सब चिंता न करो। आखिर लोग अपनी जरूरतों के लिए बाहर निकलते हैं कि नहीं?सबको तो कोविड नहीं हो जाता?''

ऋचा ने कहा–''अब तुमसे मैं बहस नहीं करूँगी। तुम तो बात मानने से रहे।''

अभिनव ने नाक पर मास्क चढ़ाया और जाने के लिए तैयार हो गया। जाने से पहले उसने पूछा–''किसी को कुछ चाहिए बाहर से?''

ऋचा ने कहा–''मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस तुम जल्दी लौट आना और भीड़भाड़ से बचना।''

माँ ने भी कहा–''हाँ बेटा! जल्दी लौट आना।''

''तुम चिंता मत करो। जल्दी ही आता हूँ।''

यह कहते हुए अभिनव घर से बाहर निकला। एक लंबे समय बाद खुली हवा का संपर्क पाकर उसे लग रहा था, जैसे खुले आसमान में उड़ने के लिए दो पंख मिल गये हों। एक अंतराल बाद शिथिल पैरों को सड़क नापने का मौका मिला था। मन तो प्रफुल्लित था, पर पैर काँप रहे थे। दीवारों में कैद रहते हुए पाँवों को चलने की आदत जो छूट गई थी। अगल–बगल सड़क पर अभी कई लोग चल रहे थे और उसे यह सब देखना बहुत अच्छा लग रहा था। जिंदगी के स्पंदनों को वह महसूस कर रहा था। थोड़ी देर के लिए ही सही, पर जैसे ही बंदी टूटती, इस शहर की साँसें चलने लगतीं। अभी सब अपनी–अपनी जरूरतों के लिए बाहर निकले थे–खासकर आमलोग जो इस संकटकाल में भी अपना आहार जुटाकर नहीं रख पाये थे।

उसी महल्ले में रहनेवाला पेंटर चंदन लगातार बेरोजगार बैठा हुआ था, जबकि उसमें हुनर की कमी नहीं थी। पपड़ी झड़ाती हुई दीवारों को रगड़–रगड़कर और रंग–रोगन मारकर वह रेशमी बना देता था। लेकिन आजकल वह दिनभर बाल बिखराये हुए इधर–उधर फिरता रहेगा। कभी इधर बैठता, कभी उधर बैठता। इस आफत काल में जब सबको अपनी जान की पड़ी थी और बाहर जाना–आना मना था, तो उसे काम भी कहाँ से मिलता?वह दीवारों की पपड़ी हटाकर उन्हें मखमली बना सकता था, पर अपनी जिंदगी की पपड़ी हटाने में असमर्थ था। अभी वह राशन खरीदने के लिए अपने टीन–टप्पर के बसेरे से निकलकर किराने की दुकान की ओर चला जा रहा था। तभी सामने से आते हुए अभिनव पर उसकी नजर पड़ी। वह रुक गया और बोला–'नमस्कार भैया! कब आए?''

'ओह चंदन! कैसे हो तुम?''

''ठीक हूँ। लेकिन इधर बैठा हुआ हूँ। पिछले साल मैंने ही आपके घर की पेंटिंग की थी।''

अभिनव को तो मालूम नहीं था, लेकिन यह महसूस होते ही कि अभी उन दोनों के बीच दूरी बहुत कम है, वह तीन कदम पीछे हट गया। उसने सोचा कि पिछले साल घर तो पेंट हुआ था, जो घर की दीवारों को देखकर साफ पता चल रहा है, पर पेंटर कौन था?यह माँ ही जानती हैं।

अभिनव ने कहा–''तो घर तुम्हीं ने पेंट किया था।''

''हाँ, आपका सारा घर मैंने ही पेंट किया था।'' चंदन ने मुस्कुराते हुए गर्व से कहा।

फिर बोला–''अब आपको अपनी चहारदीवारी तो पेंट करानी होगी?पिछले साल पेंट नहीं हुई थी। माँ जी ने मना कर दिया था।

अभिनव ने कहा–''हाँ, बाऊंड्रीवॉल थोड़ी पुरानी लग रही है। पर तुम तो जानते हो कि इस लॉकडाउन में सारे काम बंद हैं। अभी तो कोई घर से बाहर ही नहीं निकल रहा है, तो काम क्या होगा?फिलहाल तो नहीं करवाना है, पर जब होगा तो तुम्हें ही बुलाऊँगा।''

चंदन ने अपनी मायूसी को नकराते हुए कहा–''जी, ठीक है। मेरा मोबाइल नंबर ले लीजिए। मुझे कॉल कर दीजिएगा, तो मैं आ जाऊँगा। यह कहते हुए उसे याद आया कि आजकल तो उसके मोबाइल में पैसे ही नहीं रहते हैं। कोई कैसे कॉल करेगा उसे?वह आजकल न किसी को कॉल कर सकता है और न ही किसी का कॉल रिसीव कर सकता है। फिर भी नंबर तो दे ही सकता था। दे दिया।

अभिनव उसका मोबाइल नंबर सेव करके घर की ओर बढ़ गया।
अपना नंबर देकर भी मन में निराशा लिये चंदन किराने की दुकान की ओर चल पड़ा। ...आज भी कोई काम नहीं मिला। मन में बवंडर उठ रहा था। किससे बात करें?इस बंदी में काम कहाँ से मिलेगा?और कबतक ऐसे चलेगा?तेजी से चलने के कारण उसकी साँसें फूलने लगी थीं। इधर वह अपने को काफी कमजोर भी महसूस करने लगा था।
किराने की दुकान में जाकर उसने कहा–''एक किलो चावल दीजिए।'' थोड़ी देर बाद एक पैकेट उसके सामने रख दिया गया। चंदन ने जेब से एक मुड़ा–तुड़ा नोट निकालकर दुकानदार को पकड़ाया। दुकानदार ने कहा–'पैसे तो आधे ही हैं।''
''बाकी दूसरे दिन दे दूँगा।''
''नहीं, अभी दो।पहले का भी बाकी है तुम्हारे पास।''
हारकर सब्जी के लिए बचाकर रखा गया नोट उसकी ओर बढ़ाया और एक किलो चावल का पैकेट लेकर घर की ओर पछताता हुआ चल दिया।
घर पहुँचा तो उसने पत्नी को आवाज दी–''बवीता! ओ बवीतवा! कहाँ गई ... ?''
आवाज सुनकर बवीता आयी और आते ही उसने तीखी नजरों से देखते हुए सवाल किया–''चावल लेकर नहीं आए?''
चंदन ने कहा–''ये लाया तो हूँ।अब जल्दी से जाकर खाना बना ले।''
बवीता ने कहा–''यह क्या लाये हो?इतना सा चावल और साग–भाजी कुछ भी नहीं?''
''मुझसे जो हुआ सो लेकर आया हूँ''–चंदन ने कहा।
''इसी से खाना बनेगा?इससे क्या होनेवाला है?''
''तो मैं क्या करूँ?रोज तो काम खोज रहा हूँ।मिल ही नहीं रहा है।''
''आज मुझसे खाना नहीं बनेगा'' यह कहते हुए वह मुँह फेरकर जाने लगी। चंदन ने पीछे से उसका बाल पकड़ लिया। बोला–''क्या बोली?नहीं बनाएगी?''
''अब तो सच में नहीं बनाऊँगी।''
अपने बालों पर उसकी पकड़ तेज हुई तो बोली–''और मैं जा रही हूँ बाबू के पास।''
उसके बाल अभी भी उसकी मुट्ठियों में थे। उसने छुड़ाने की कोशिश की तो चंदन ने उसे दो–चार थप्पड़ जड़ दिये। गुस्से से मुँह से झाग निकालते हुए बोला–''चली जा अपने बाप के पास। बड़े लाट है ना कि बैठाकर खिलाएँगे?साली...दिन रात अपने फक्कड़ बाप का ताव देती रहती है।''
''हाँ–हाँ, चली जाऊँगी।तुम्हें खिलाना नहीं पड़ेगा।...ओ माई रे... किस जन्म का पाप था कि इससे पाला पड़ा....माई रे।'' यह कहकर बवीता वहीं बैठकर रोने लगी और रोते–रोते वहीं जमीन पर सो गई। हल्ला सुनकर तीनों बच्चे दौड़े आए और सहमकर खड़े हो गये।

प्रतिक्रिया :
आदरणीय दयानन्द
नमस्कार,

अनेक वर्षों से सुसंभाव्य की पाठिका हूँ।पत्रिका एवं संपादक महोदय की प्रशंसक भी।अन्य अंकों की तरह ही अक्टूबर 2021 का अंक भी प्रशंसनीय है।पत्रिका को खोलते ही पृ. 4 पर आलोक धन्वा की कविता की अंतिम पंक्तियों ने हृदय को व्यथित कर दिया–''क्या एक ऐसी/ दुनिया आ रही है/ जहाँ कवि और पक्षी/ फिर आयेंगे ही नहीं।''''बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' सराहनीय प्रयास है।जायसवालजी हिन्दी की सेवा में निरंतर सक्रिय हैं।अन्य पुस्तकों की समीक्षाएँ भी सटीक हैं।

लघु कथाएँ लघु होते हुए भी याद रह जाती हैं।'ये खत मातृभूमि के नाम' मुझ जैसे इतिहास के विद्यार्थी को बहुत कुछ याद दिला जाएगा।कवियों की भावनाओं के साथ ही देश पर जान न्योछावर करने वाले जांबाजों की तस्वीरें चलचित्र की भाँति आँखों के सामने से गुजरने लगीं।

डॉ. अमर सिंह वधान के लिए क्या लिखूँ!छोटे मुँह बड़ी बात होगी।'इतिहास दृष्टि और साहित्य' में लेखक ने संक्षेप में साहित्य को महत्व तथा साहित्य और इतिहास में अंतर को स्पष्ट किया है।

आलोक भारती का आलेख 'अगस्त क्रान्ति एवं दामोदर प्रसाद सिंह एक आकलन' गागर में सागर जैसा है।यह लेख संक्षेप में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास को समेटे है।छोटे–छोटे विद्रोहों से लेकर सत्तावनी क्रान्ति, सशस्त्र क्रांतिकारी आंदोलन, फिर गांधीजी का अहिंसात्मक आंदोलन की चर्चा करते हुए लेखक ने स्वाधीनता संग्राम में दामोदर प्रसाद सिंह के योगदान का आकलन किया है।

मदन गुप्ता की कहानी 'वसीयत' में आज के युग की यथा कथा है, साथ ही मित्तल साहब किस प्रकार समाजसेवा की मिसाल बन गये, इसका मार्मिक चित्रण है। नीरजा हेमेन्द्र की 'कोरोना...कोरोना...लॉक डाउन इन परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं, हताशा, निराशा की कहानी है।'द मेकिंग ऑफ द नेताइन' पढ़कर विश्वास ही नहीं हुआ।क्या ऐसा भी होता है?होता ही होगा।लेखक डॉ. पूरन सिंह समाज की इस कड़वी सच्चाई को उजागर करने के लिए बधाई के पात्र हैं।

–डॉ. ऊषा निगम, 74 कैंट,
कानपुर–208004, मो0–9792733777

कहानी :

पशुपतिनाथ

डॉ. रंजना जायसवाल,
लालबाग कॉलोनी छोटी बसही, मिर्जापुर उप्र)
मो. 9415479796

भगवान के द्वार खुल गये थे। पर्यटकों की भीड़ धीरे–धीरे बढ़ने लगी थी। दुकानें सजने लगी थी, आखिर सीजन का समय था। सालभर यात्रियों के आने का सबको इंतजार रहता था। कलुवा का खच्चर वीरू तीन दिन से यात्रियों को ढो रहा था। ऊँची–ऊँची पगडंडियों पर चलते–चलते वीरू के पैर भी दुखने लगे थे। थकान से उसकी आँखें नहीं खुल रही थी। कल रात को उसने खाना खाया था, खाना भी क्या एक सूखी रोटी...कमजोरी से कदम नहीं पड़ रहे थे। ऊपर से कलुवा ने उस औरत को बैठा दिया था, कितनी भारी थी वो और उसके हाथ में वो झोला। भोलेनाथ ही जाने क्या भर रखा था। झोला तो उस औरत से भी भारी था। जैसे ही औरत बैठी, उसके पैर बहकने लगे, वो जोर से चीखी थी।

''उतारो–उतारो, मुझे नहीं जाना तुम्हारे इस खच्चर के साथ, अभी तो मुझे वो गिरा ही देता।''

कलुवा को बड़ी मुश्किल से सवारी मिली थी, उसके पुरखे भी यही काम करते आये थे। उसे कोई दूसरा काम भी नहीं आता था। सीजन के आते ही ग्राहकों की मारा–मारी होने लगती थी। एक अनार सौ बीमार वाली हालत थी। हर आदमी अपनी ओर ग्राहक को खींचने लगता। ग्राहक भी कम चतुर नहीं थे, कितना मोलभाव करते थे। मुश्किल से कुछ पैसा बचता था, पेट तो मानेगा नहीं, कलुवा भी बेचारा क्या करता?

''सड़ाक–सड़ाक!''

कलुवे ने वीरू को सन्टी से मारा। वीरू दर्द से कराह उठा। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया।

''साला! मन भर खाता है और काम करने में इसकी नानी मरती है।''

मन भर...कल रात की सूखी रोटी उसकी आँखों के आगे से गुजर गई।

''दीदी! आप बैठो, अब ये कुछ नहीं करेगा।''

''पक्का न...अबकी बार कुछ हुआ न तो एक पैसा नहीं दूँगी।''

''अरे नहीं दीदी! अब ये कुछ नहीं करेगा।'

अंतिम वाक्य बोलते–बोलते कलुवा के शब्द न जाने क्यों कठोर हो गये थे। उस कठोरता का अनुभव वीरू ने भी किया था। वह कठोर शब्द मानो उसके दिल से आकर टकरा गये। वीरू ने अपनी सारी शक्ति को इकट्ठा किया और सवारी को बैठा पशुपतिनाथ के धाम की ओर चल पड़ा। न जाने क्यों वे वीरू का भ्रम था या कुछ और, रास्ता आज कहीं ज्यादा कठिन और लंबा लग रहा था। पतली–पतली पगडंडियों को पार करता हुआ वीरू आखिर सवारी को लेकर भोलेनाथ के धाम तक पहुँच ही गया। चारों तरफ भीड़ ही भीड़ थी। बाबा का दरबार फूलों से सजा हुआ था। कपूर, अगरबत्ती और धूपबत्ती की गंध से पूरा वातावरण सुगंधमय था। घंटे घड़ियाल की आवाज से एक–एक पहाड़ शिवमय हो रहा था।

'जय भोलेनाथ की जय!'

जयकारे से सारा वातावरण गुंजायमान था। भोलेनाथ के शिवलिंग के आगे स्थापित नंदी बैल की मूर्ति एकटक भोले को देख रही थी। वीरू ने आँखें मूँद ली और मन ही मन बुदबुदाया।

''हे पशुपतिनाथ! आप तो पशुओं के नाथ हो, फिर आप हमारे दर्द को कब समझेंगे? कब हमारा उद्धार करोगे?''

वीरू वहीं बैठ गया, सवारी थोड़ी देर बाद दर्शन करके वापस लौट आई।

''दीदी! दर्शन हो गये?''

''हाँ भैया! अब वापस चलो। भैया! ठंढ बढ़ रही है। बहुत अच्छे से दर्शन हो गये। भोलेनाथ सबका भला करें।''

कलुवा आज बहुत खुश था। सवारी बाबा के दर्शन कर बहुत खुश थी, शायद खुशी में उसे अलग से भी कुछ पैसा दे दे।

''चल रे वीरू! देर हो रही है, सवारी को नीचे घाटी तक पहुँचाना है।''

पर वीरू वहीं बैठा रहा, कलुवा की आवाज थोड़ी सख्त हो गई।

'अबे, सुन नहीं रहा है क्या? यहीं बैठे रहने का इरादा है।''

कलुवा ने अपनी सन्टी से वीरू को कोचा। वीरू एक तरफ लुढ़क गया। शायद भोले बाबा ने उसकी पुकार सुन ली थी और वह इस दुनिया को छोड़कर जा चुका था।

कविता

देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
कैतका, बस्ती (उप्र.)
मो.–7355309428

संभावनाओं का विस्तृत होता है आकाश...

संभावनाओं का विस्तृत होता है आकाश
इसी संभावना के विस्तृत आकाश में
हमें सफलता की होती है तलाश
सफलता का स्वाद चखने के लिए
हम लगा देते हैं अपनी शक्ति, शौर्य और मस्तिष्क
अपनी प्रतिभा का करते हैं आकलन
संभावनाओं का सुरम्य होता है गगन
हम अपने कर्तव्य पथ पर रहते हैं मगन...
एक किसान खेत में रोपता है बीज
उसे संभावना होती है लहलहाते फसल की
शिक्षक अपनी शिक्षा से शिष्यों के अच्छे भविष्य
की संभावना रहती है
वो चाहता है कि बच्चे शिक्षा ग्रहण कर
अच्छे पद पर आसीन हो जाए
अच्छे इंसान और एक सुयोग्य नागरिक बन जाए...
संभावनाओं में सदैव छुपी होती है जीत
एक मरीज जिसे लाइलाज बीमारी हो जाती है
सैद्धांतिक रूप से उसे पता होता है कि
उसकी मृत्यु निश्चित है
पर उसे भी संभावना स्वस्थ होने की रहती है....
हमारी इच्छाशक्ति यदि दृढ़ हो
मन में बस! जीतने का संकल्प ठान लें
पूरी की पूरी संभावना रहती है
कि हम हार के करीब होते हुए भी
जीत को अपनी मुट्ठी में कर लें...
हम संभावनाओं में खोजते हैं बेहतर कल
हम परेशानियों और समस्याओं से घिरे रहते हैं
चारों पहर रहता है मन विकल
संभावना रहती है कि हम समस्याओं से निपट लेंगे
हम प्रयास करके संकटों से उबर कर, संभल जाते हैं
फिर खुश रहने लगते हैं हर पल....।

कहानी :

इत्र में भीगी हथेलियाँ

विनीता राहुरीकर
होशंगाबाद रोड जाटखेड़ी, भोपाल (मप्र)
मो.–9826044741

सामने आसमान से सूरज धीरे–धीरे नीचे उतर रहा था। जल्दी ही सामनेवाली इमारत के पीछे छुप गया और फिर अपनी सारी लालिमा को समेटे पता नहीं किस लोक को चला गया कि धरा पर अंधकार का छाया डोलने लगी। सूरज डूब गया और पंछी अपने नीड़ों को लौटने लगे। प्रभास ने एक गहरी साँस ली। उनके दिन का सूरज तो डूबते हुए उस पंछी को भी साथ ही ले गया, जिसके कारण उनके नीड़ में चहचहाहट रहती थी। सारे नीड़ों के पंछी साँझ ढलते ही लौट आते, लेकिन उनका जीवनसाथी जाने किस देश की ओर उड़ गया कि अपने नीड़ का रास्ता ही भूल गया। जाने कब कैसे बिछड़ गये, वे उससे कि आज अपने आसमान में अचानक अकेले रह गये। जैसे–जैसे घोंसलों में लौटते पंछियों के कलरव से आसमान मुखर होता जा रहा था, वैसे–वैसे उनके भीतर का सन्नाटा गहराता जा रहा था।

क्यों...क्यों विधि का ऐसा विधान है कि रोज शाम को डूबनेवाला सूरज तो हर बार दूसरे दिन सुबह पुनः लौट आता है, लेकिन गया हुआ व्यक्ति उस पार से फिर कभी लौटकर नहीं आता। प्रकृति का ऐसा भेदभाव क्यों। वह अपने सूरज को तो फिर से भेज देती है संसार में, उजाला करने को लेकर उनके छोटे से संसार को हमेशा के लिए अंधेरा कर दिया। प्रभास की आँखें फिर भींग गई। आँसू बहुत रोकने पर भी बह निकले, जिन्हें उन्होंने बड़ी तत्परता से शर्ट के आस्तीन में पोंछ लिया, लेकिन लगा जैसे पीछे से कोई धीरे से निकल गया।

रात में बिस्तर पर लेटते ही सीने में कुछ घुमड़ने लगा। एक दुख भाप बनकर गले में अटका और तब पानी होकर आँखों से बहने लगा। पिछले चार महीनों में कितना रो चुके हैं वे। भीतर के दुख को आँसुओं में ढाल चुके, लेकिन मन का भारीपन है कि कम ही नहीं होता। जो जमा हुआ है, वह जैसे और ठोस होता जा रहा है और उनके सीने की जकड़न बढ़ती ही जा रही है। एक भारी पत्थर सा है, जो छाती पर हर समय हुआ महसूस होता है उन्हें। एक सवाल मकड़जाल सा घेरे रहता है।

क्यों रंजना!...क्यों चली गई तुम असमय ही मुझे छोड़कर। बड़ा तो मैं था, जाना तो पहले मुझे चाहिए था, तुम पहले क्यों?यह क्यों दिन–रात उनके सामने खड़ा रहता है। जानते हैं इसका कोई जवाब नहीं है। ऊपरवाले के यहाँ ऐसा कोई नियम नहीं है कि जो जीवन की बस में, इस यात्रा में पहले चढ़ा है, वही पहले उतरेगा। इस यात्रा में कौन सा यात्री किस समय, कब, किस स्टॉप पर उतर जाए, किसे पता होता है। रंजना भी क्या उन्हें छोड़कर जाना चाहती होगी, कभी नहीं। उसे पता था वे उसके बिना किसी हाल में नहीं रह पाएँगे। यह दुख वो सहन नहीं कर पाएँगे।

प्रभास तकिये का सहारा लेकर पलंग पर टिककर बैठ गये। कितना पैसा जोड़ रखा था उन्होंने रंजना के लिए। स्वाभिमान से रह पाओगी। बच्चों पर भी आश्रित रहने की जरूरत नहीं और हाँ मेरे जाने के बाद जैसे रहती आई हो, हमेशा वैसे ही रहना, माथे पर बिंदी, गले में मंगलसूत्र, पैरों में बिछुआ और रंगीन साड़ियाँ ही पहनना। रंजना ने जैसे उनकी आज्ञा का पालन किया। खूब हरी भरी साड़ी, बिंदी, चूड़ियाँ, मंगलसूत्र पहने रही। सब साथ ले गयी, बस उन्हें ही उतारकर इस धरा पर छोड़ गई। अठहत्तरवें बरस की ओर बढ़ते हुए वे रह गये और बहत्तर साल की उम्र में रंजना चली गई। जिसके होने की सुगंध ने जीवन को सदा सराबोर रखा, वह हथेलियाँ पुनः एक बार बिछड़ गई और जीवन एकदम फीका सा उद्देश्यहीन हो गया।

दरवाजे पर टंगे पर्दे के पार कोई छाया हिलती सी देखी। प्रभास तुरंत दरवाजे की ओर पीठ करके लेट गये। कोई देख न ले कि वह रो रहे हैं। साँस रोककर वे निश्चल पड़े रहे। मन के संस्कार उन्हें रोने पर लज्जित अनुभव करवाते थे। पुरुष है ना, पुरुष तो हिम्मत व दृढ़ता का प्रतीक माना जाता है, रोने जैसी कमजोरी अनकहे ही उसके लिए वर्जित है। जबकि भावनात्मक रूप से पुरुष तो स्त्री से भी अधिक कमजोर होता है। स्त्री में अपना दुख प्रदर्शित करने की, सबके सामने रोने की हिम्मत होती है, पुरुष में इतना साहस नहीं होता। साहस हिम्मत के क्षेत्र में पुरुषोचित आवरण ओढ़े वह सबके सामने धैर्य का झूठा प्रदर्शन कर भीतर ही भीतर अपने दर्द में घुलता रहता है। वे भी तो छुप–छुप के रोते हैं, कभी अखबार की आड़ में, कभी रात के एकांत में, कभी नहाते हुए।

अगले दिन सुबह वे अखबार पर नजरें गड़ाये बैठे थे। समय काटने के उद्देश्य से आँखों के सामने अखबार लिये वे पिछले आधे घंटे से पढ़ने की कोशिश कर रहे थे, लेकिन एक पंक्ति भी ठीक से पढ़ नहीं पा रहे थे।

''नानाजी! माँ पूछ रही है नाश्ता दे दूँ?' नीरा ने आकर पूछा।

''कितने बज गये?'' उन्होंने अखबार से आँख उठाकर पूछा।

''सवा आठ बज गये।'' नीरा ने बताया।

''अच्छा दे दो।'' उन्होंने उदासीन भाव से कहा।

नीरा ने उपमा की प्लेट ला दी। वे उपमा गले से नीचे धकेलने लगे। भूख तो आजकल लगती नहीं, खाना खाने का जरा भी मन नहीं होता, लेकिन वह किसी को परेशान नहीं करना चाहते, इसलिए जब कोई चाय का कप पकड़ा देता, वह चुपचाप पी लेते; कोई नाश्ता–खाना दे देता, वह खा लेता; ना उन्हें ठंडा–गरम का भान रहता, न स्वाद का।

छप्पन बरस का लंबा समय कैसे एक क्षण में टूट गया। इतना लंबा जीवन जीवनभर का साथ आज एक सपने की भाँति लग रहा है। जीवन के जिस काल में जीवन साथी की सबसे अधिक आवश्यकता थी, उसी आयु में रंजना उन्हें छोड़ गयी। भरा पूरा परिवार है उनका, लेकिन आज बस एक रंजना के न रहने से जैसे वे अकेले रह गये, रिश्तों की भीड़ में अकेले। ऐसे ही अकेले रह गये थे वे, असहाय से अकेले जब उनकी अम्मा उन्हें छोड़ गई थी। प्रभास ने अपनी हथेलियाँ देखी। बचपन में वह नींद में डर कर रोने लगते थे, तो दो हथेलियाँ तुरंत उन्हें थपकाकर आश्वस्त कर देती, उनका सिर और पीठ सहला देती। वह अकेली संतान थे। पिता काम की वजह से घर पर कम ही रहते। जन्म से ही प्रभास बस माँ से ही जुड़े थे। वह अम्मा के प्राण थे और अम्मा उनकी। भले ही कितनी गर्मी हो उन्हें गोद में लेकर ही अम्मा खाना बना पाती। वे चूल्हे की आँच सह जाते, लेकिन अम्मा से दूरी नहीं। अम्मा की हथेलियों में जाने कौन से इत्र की सुगंध बसी थी, जो उन्हें जीवन की आश्वस्ति सी लगती। वे अम्मा का पल्लू पकड़कर ही सोते। अम्मा का हाथ नींद में भी उनपर रहता और उनकी हथेलियों से झरती सुगंध में वे गहरी नींद में खो जाते। उन हथेलियों की सुगंध उनके जीवन के हर कोने में व्याप्त थी। खाने में स्वाद बनकर, साफ धुले कपड़े की चमक में, उन्हें पहली बार स्कूल के लिए तैयार करते हुए पहनाए गए यूनिफॉर्म में, बड़े होने पर उनके टेबल पर रखे चाय के प्याले में, करीने से सजी उनकी किताबों में तहाकर आलमारी में रखे उनके कपड़ों में उन्हीं हथेलियों की सुगंध बसती थी। रात में वही हथेलियाँ चुपके से उन्हें चादर या रजाई ओढ़ा जाती। अम्मा के बिना वे अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उनकी हथेलियों की सुगंध में ही प्रभास की साँसें चलती थीं। अपना कहने को था ही कौन उसका। अम्मा सर पर या पीठ पर हाथ फेर देती थी, तो वह बड़े से बड़े दुख से भी उबर जाते थे।

लोग पता नहीं क्यों कहते हैं कि स्त्री पुरुष पर आश्रित होती है। सच तो यह है कि पुरुष जीवन के हर पग स्त्री पर आश्रित होता है। वह स्त्री ही तो

होती है, जो तेल मलकर मांस के लोथ में हड्डियाँ बनाती हैं और उसे एक शरीर का आकार देती है। वही होती है, जो अपनी हथेलियों का सहारा दे धरती पर पैर जमाना सिखाती है, अन्न का ग्रास मुँह में देकर पोसती है। हाथ पकड़कर क ख ग सिखाती है। पुरुष हर क्षेत्र में स्त्री पर निर्भर करता है। ममत्व से लेकर सामाजिक, मानसिक, भावनात्मक संवल के लिए भी। स्त्री की हथेलियों में जीवन का इत्र होता है, जो पुरुष में प्राणों की सुगंध भरता है। इन हथेलियों के बिना तो वे एकदम निष्प्राण हैं। माना शरीर में अभी भी हृदय धड़क रहा है, फेफड़े हवा अंदर बाहर खींच रहे हैं, लेकिन इन सारी भौतिक क्रियाओं के बीच प्राण कहाँ हैं, जीवन का आनंद कहाँ है! आनंद तो रंजना थी, जीवन का आश्वासन तो रंजना थी।

चाहे स्कूल की हो, चाहे कॉलेज की, वे मन की दिनभर की हर बात सहज मन से अम्मा को बताते थे। उनका मन अम्मा के लिए दर्पण जैसा था, जिसमें झाँककर अम्मा सब कुछ देख सकती थी। पिताजी के गुजर जाने पर भी अम्मा की हथेलियों का साया उनके सर पर था और उन्होंने मजबूती से उन्हें थाम रखा था। जब अम्मा उन्हें छोड़कर जाने लगी तो उन्हें लगा कि उनकी ही देह से प्राण निकले जा रहे हो। असह्य था वह दुख, दारुण थी वह वेदना। कैसे जी पाऊँगा तुम्हारे बिना अम्मा, वह बच्चे की भाँति बिखल पड़ते थे। 'जा कहाँ रहे हैं बिटवा, अम्मा भला तुम्हें कभी छोड़कर जा सकती है। देह भले छूट रही है हमारे प्राण तो सदा तुममें ही बसे रहेंगे।' अम्मा ने रंजना की हथेली उनके हाथ में थमा दी थी–'अब यही तुम्हारी सुख–दुख की साथी है बिटवा! आगे की यात्रा अब इसके साथ ही करना।'

और उसके बाद जीवन में अम्मा के हाथों में बसा इत्र जैसे रंजना की हथेलियों में बस गया और वे उसकी सुगंध में धीरे–धीरे आश्वस्त हो गये। रंजना की हथेलियों ने अम्मा की संपूर्ण धरोहर को उसी स्नेह से, उसी अपनेपन के साथ सहेज लिया था। घर को, गृहस्थी को और उन्हें भी। बच्चों की बढ़ती जिम्मेदारियों, घर–परिवार, दूर पास के नाते–रिश्ते सभी कुछ सँवारने में रंजना की हथेलियाँ भी उतनी ही कुशल थी, जितनी कि अम्मा की। ऐसा लगता था अम्मा अपने हाथों से सारी सुगंध रंजना को सौंप गई है। पूरे छप्पन बरस तक आत्मारूप में उनके हृदय में बसी रही, लेकिन अचानक... बहुत खाली से हो आये थे वे। अम्मा उन्हें रंजना को सौंप गयी थी, लेकिन रंजना उन्हें एकदम अकेला कर गई, निःसहाय। अम्मा के बाद वे अपने मन की हर बात रंजना से साझा करते। दिनभर नौकरी में क्या कुछ हुआ, कौन मिला, किसने क्या कहा, दफ्तर की राजनीति, एक–एक क्षण वे रंजना के साथ बाँटते। अब किससे मन बाँटे वे, जीवन का, मन का साझेदार तो चला गया हमेशा के लिए।

प्रभास ने विकल होकर अपनी हथेलियाँ मली। रंजना थी तो उनका एक स्थायी ठौर था, एक घर था। उसके जाते ही जैसे वे घर होते हुए भी बेघर हो गये। अब उस मकान की बेजान दीवारें उन्हें काटने को दौड़ती। चप्पे–चप्पे में बसी यादें रात–दिन उन्हें व्याकुल करती रहतीं। जैसे–तैसे उन्होंने लोक–लाज और विधियों के सम्पन्न होने तक खुद को उस घर में रोके रखा, फिर बेटी उन्हें अपने घर ले आयी। हालाँकि उसी शहर में होने के कारण कुछ खास फर्क नहीं पड़ा, क्योंकि मन तो वहीं था। वेदना तो यहाँ भी साथ ही चली आई है। तब भी जीवन के शेष दिन व्यतीत तो करने ही है। कभी बेटी के यहाँ चले जाते हैं, कभी घर चले आते हैं। वहाँ सुमन है उनकी बहू, तो उनका बहुत ध्यान रखती है। ठीक समय पर नाश्ता, चाय; यहाँ बेटी भी वही सब करती है, तब भी प्राण विकल रहते हैं, जैसे श्वास के अभाव में। बस दिन काट रहे हैं वे।

प्रभास को बेटी के यहाँ आये हुए महीना भर हो गया। बेटी भरसक उनके आसपास ही रहती, कभी सब्जी बनाने सामने आ बैठती है, कभी कपड़े तहाने, तो कभी कोई और काम करने। वह रसोईघर में चली जाती तो नीरा आ बैठती। बेटी पूरा प्रयत्न कर रही थी उनका दुःख हल्का करने का। वह भी बेटी के सामने कभी–कभी दुख कर देते और किसी से कह नहीं पाते थे। बेटी ही थी जो धैर्य से उनकी सुनती, भीगी आँखों में आँसुओ को रोककर उन्हें सान्त्वना देती। वे बार–बार एक ही बात कहते, तब भी बेटी पूरे ध्यान से सुनती। उनकी भावुकता को आदर देती, लेकिन वे जिस सुगंध के संरक्षण, मानसिक निर्भरता के आदी हो चुके थे उसके लिए सतत व्याकुल बने रहते।

अक्टूबर की शामें अब हल्की सी ठंढी रहने लगी थी। प्रभास को ठंढ ज्यादा ही लगती थी। कल रात भी देर तक जागने के बाद जब उन्हें झपकी लगी, तो हल्की सी ठंढी का अहसास हो रहा था, फिर पता नहीं कब उन्हें नींद लग गई। जब जागे तब चादर के ऊपर उनके पैरों तक एक कंबल भी ओढ़ाया हुआ था। दोपहर में नींद तो नहीं आती, मगर वे कमरे में जाकर लेटे रहते हैं, आँख बंद करके घंटा दो घंटा, ताकि बेटी भी थोड़ा आराम कर सके। सुबह जल्दी उठकर जो काम में लगती है, तो दामाद के आने तक देर रात हो जाती है उसे काम समेटने में। आज भी वह कमरे में आकर लेट गये। कंबल ओढ़कर लेटे रहना अच्छा लग रहा था। पाँच बजे बाहर आए तो नीरा सोफे पर बैठकर पढ़ रही थी।

''चाय बना दूँ नानाजी!'' नीरा ने किताब बंद करते हुए पूछा।

''माँ उठ जाए तब साथ ही बना देना।'' उन्हें लगा बेटी सो रही होगी।

''माँ तो दोपहर से ही बाहर गई है।'' नीरा ने बताया।

'कहाँ गई है?''

''पता नहीं, कह रही थी नानाजी उठ जाए तो चाय बना देना।'' नीरा चाय बनाने चली गयी।

प्रभास बालकनी में आकर हल्की धूप में बैठ गये। नीरा चाय दे गई। बेटी नहीं है, तो घर में अजीब सन्नाटा लग रहा था। वह होती है तो उनसे बातें करती रहती है या नीरा से बोलती रहती है। घर में कुछ आवाजें तो तैरती रहती है। कहाँ गई होगी, क्या काम पड़ गया होगा। वह देर तक बालकनी में बैठे बाहर की चहल–पहल को देखते हुए अपने भीतर के सन्नाटे को दूर करने का, एकाकीपन को दूर करने का प्रयत्न करते रहे। सूरज ढल गया था। हवा में हल्की सी ठंढक उतर आई थी। वे भीतर जाने का सोच ही रहे थे, सोच रहे थे कि कल घर वापस चले जाएँ। सारे स्वेटर, गर्म कपड़े वहीं हैं। कल से नवम्बर लग जाएगा तो दिन पर दिन ठंढ बढ़ती ही जाएगी। उठने को हुए थे कि तभी कंधों पर किसी का स्पर्श पाकर चौंक गये। बेटी पता नहीं कब लौट आई थी, उनके कंधों पर स्वेटर रखते हुए कह रही थी–''हल्की ठंढक पड़ने लगी है ना, आपके स्वेटर–शॉल ले आई हूँ। स्वेटर पहन लीजिए और अंदर आ जाइए। अब धूप ढलने पर हवा ठंढी होने लगी है।''

स्वेटर को पहनते हुए उनकी आँखें भींग आई। रंजना की याद में नहीं, बस यूँ ही। कुछ देर बाद वे कमरे में गये तो बेटी बैग में से उनके गर्म कपड़े निकालकर आलमारी में रख रही थी।

''ऊपरवाले खाने में पूरी और आधी बाँहवाले स्वेटर हैं। नीचेवाले खाने में पजामे और गर्म बनियाने रखी हैं। इधर शॉल है। उस ड्रावर में मफलर है और इसमें मौजे।'' बेटी बता रही थी और कपड़े तहाकर रखती जा रही थी। अचानक उन्हें लगा एक चिर परिचित सुगंध उनके आसपास फैल गई है, इत्र से भीगी हथेलियों की सुगंध। वह सुगंध जो अम्मा रंजना की हथेलियों को दे गई थी, क्या रंजना रेवती को दे गई है! या हर स्त्री कोख में रहते ही अपनी बेटी की हथेलियों में वह सुगंध भर देती है। ममत्व की सुगंध, साथ के आश्वासन की सुगंध, सबकी परवाह की सुगंध। स्त्री जन्मतः ही माँ होती है। और पुरुष माँ, बहन, पत्नी अथवा बेटी के रूप में इसी 'माँ' की हथेलियों में बसी सुगंध पर भावनात्मक रूप से जन्म भर आश्रित होता है। हर स्त्री की हथेलियाँ जीवन की सुगंध से भरे इत्र में भीगी होती हैं। अम्मा की भी, रंजना की भी और रेवती की भी। पीढ़ी दर पीढ़ी की स्त्री अपनी हथेलियों की सुगंध को आनेवाली पीढ़ी को सौंप देती है और हर पीढ़ी की स्त्री के पास होती है पुरुष को संवल देती इत्र से भीगी हथेलियाँ।

कहानी

राष्ट्रप्रेम

डॉ. संतोष सांडू घल्डे
1–6–106, न्यू पहाड़सिंगपुरा,
लेणी रोड, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
मो.–7020994770

एक छोटा–सा कोना जहाँ एक बुजुर्ग व्यक्ति 'रहीमन' साहब की चाय का ठेला है। सब लोग उन्हें 'चाचा' कहकर पुकारते हैं। उनका बच्चा उनके काम में हाथ बँटा रहा है। वहाँ दो व्यक्ति प्रतिदिन चाय पीने के बहाने बातचीत करने पहुँच जाते हैं। उनकी मूँछें मानों तलवार की धार स्फूर्तिली काया एक अलग मिजाज, जो औरों को अधिक प्रभावित करता है। उसके हाथ में एक–एक प्याला, जिसमें चाय भरी हुई है। एक–एक चुसकी लगाकर चाय का मजा ले रहे हैं और वर्तमान युवा अवस्था की खाल उधेड़ते जा रहे हैं। वे दो व्यक्ति कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं, वे भारतीय सेना से रिटायर्ड हो चुके मल्लूसिंग और कल्लू सिंह है। जिनके व्यक्तित्व में राष्ट्रीयता के प्रति सद्भाव कूट–कूटकर भरा हुआ है और वे दोनों हर एक व्यक्ति से यही मंशा लगाए हुए हैं।

रहीमन चाचा का हमेशा की तरह एक कान मल्लूसिंग और कल्लूसिंग के बातों की ओर लगा रहा। मल्लूसिंग अपने मित्र कल्लूसिंग से कहता है कि ''भाई! यह शहर है, यहाँ एक–दूसरे के लिए मर मिटने की भावना किसी एकाध व्यक्ति में देखने को मिल जाए तो मैं धन्य हो जाऊँगा। मगर दुख की बात है...खैर जाने दो...हमारी सरहदवाली जिंदगी ही सही मायने में जिंदगी है।'' वह दिन आज भी याद आते हैं–''जब देश की रखवाली के लिए रात में एक पल की नींद नहीं, मगर चैन था...सुकून रहा...सिर्फ अपना कर्तव्य निभाते रहे। हमारी ड्यूटी थी आतंकी और घुसपैठियों को रोकना तथा उन्हें खदेड़ना और यहाँ की मिट्टी की पवित्रता को बचाए रखना, ताकि यहाँ का हर एक देशवासी चैन की नींद सो सके।'' 'हाँ, भाई मल्लूसिंग क्या दिन थे...सीना चौड़ा रहता था सरहदपर।' ''सरहद की मिट्टी की गंध ही कुछ अलग है, जो मनुष्य के भीतर एक सकारात्मक ऊर्जा का संचार कर देती है। धरती माँ की सेवा करना हर किसी के बस की बात कहाँ?इन बड़ी–बड़ी इमारतों में मन नहीं लगता। यहाँ तो सम्मान की अपेक्षा करना कुत्ते की दूम सीधी करने के बराबर है।'' हाँ, सही कहा कल्लूसिंग, ''यहाँ की युवापीढ़ी अपने जीवन में ही मशगूल है। किसी और की चिंता उन्हें कब कहाँ?देखो ना, कल की ही बात है, जब बहू से एक कप चाय की माँग की थी, वह बड़बड़ाती हुई किचन में चली गई। चाय बहुत देर तक नहीं आई, तो मैंने फिर से हल्की–सी आवाज लगा दी–'बेटा! चाय। अरे! क्या फिर किचन से बरतनों की आवाज हुई, मैं समझ गया। फिर क्या, निकल पड़ा अपनी इसी जगह चाय पीने।'' यही मलाल है, कल्लूभाई! क्या–क्या सपने देखे थे, अब सब धूँधले जान पड़ते हैं। बस, अब लगता है, सेना के सिपाही की कभी रिटायर्डमेंट न हो और अब इंतजार है उस डाकिया का जो चिट्ठी लेकर आए और उसमें लिखा हो कि ''मेजर मल्लूसिंग! जल्दी पंजाब की घाटी में रिपोर्टिंग करो।''

इसी बीच दोनों की नजर एक युवक पर जा ठहरती है, जो कुछ पुटपुटा रहा था। मल्लूसिंग और कल्लूसिंग दोनों काफी खुश हो चले हैं और उनका सीना फक्र से चौड़ा हुए जा रहा है। ''ए लड़के! इधर आ, क्या पुटपुटा रहा था अभी?...सुना तो हमें'' मल्लूसिंग ने कहा। वह लड़का अपना सीना तानते हुए...अपनी गर्दन को उठाये...गर्व करता हुआ...एक मशहूर कवि की काव्यपंक्तियाँ अपने ही अंदाज में बयां करने लग गया–

''अंकित है इतिहास पत्थरों पर, जिनके अभिमानों का
चरण–चरण पर चिन्ह यहाँ, मिलता जिनके बलिदानों का।''

मल्लूसिंग और कल्लूसिंग बहुत खुश हुए और उन्होंने उस लड़के को गले लगा लिया। मल्लूभाई, देखा?क्या जज्बा है इस लड़के में, राष्ट्रप्रेम तो रग–रग में भरा है।

''बेटा! तेरा नाम क्या है?'' कल्लूसिंग ने कहा।

उस लड़के ने अपने ही अंदाज में कहा–''शहीद लेफ्टिनेंट ध्यानसिंग का पुत्र भारतसिंग हूँ मैं।'' कल्लूसिंग और मल्लूसिंग ने भारतसिंग को सैल्यूट किया।

''बेटा क्या करते हो?'' कल्लूसिंग ने कहा।

''मैं अभी स्नातक की शिक्षा ग्रहण कर रहा हूँ और साथ ही फौज में भर्ती होकर मातृभूमि की सेवा करके उसे गले लगाने की चाहत रखता हूँ।'' भारतसिंग ने कहा।

''अच्छा तो फिर भारतसिंग! तुम अपने पिता के कदम पर कदम रखकर चलना चाहते हो?'' मल्लूसिंग ने कहा।

''जी हाँ, श्रीमान्! राष्ट्रभूमि पर अपने प्राण न्योछावर करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाएँ, इससे बड़ी सौभाग्यशाली बात और भल क्या, कोई हो सकती है?'' भारतसिंग ने कहा।

''भारतसिंग! तेरे परिवार में कौन–कौन हैं?'' मल्लूसिंग ने कहा।

''मैं, मेरी माता और एक बहन है, जिसका ब्याह अभी दो माह पूर्व ही हुआ है।'' भारतसिंग ने कहा।

''फिर भी भारतसिंग तुम सेना में भर्ती होना चाहते हो, फिर तुम्हारी माता को यहाँ कौन देखेगा?'' कल्लूसिंग ने कहा।

''राष्ट्रभूमि से बढ़कर कोई है क्या?रही मेरी माता की बात, उसे मुझपर अभिमान होगा, जब मैं तिरंगे में लिपटकर यहाँ आऊँगा और उसकी गोद में मेरा सिर होगा। और हाँ, जिस स्त्री ने अपने पति को राष्ट्र के लिए न्योछावर कर दिया, वह स्त्री अपने बेटे को रोकेगी क्या?नहीं, बिल्कुल नहीं, राष्ट्र ही उसका सब कुछ है।'' भारतसिंग ने कहा।

भारतसिंग के जज्बे को देखकर कल्लूसिंग ने मल्लूसिंग से कहा–''नहीं, अभी युवा पीढ़ी जिंदा है, असंख्य भारतसिंग जैसे राष्ट्र के लाल इस धरती पर है। फिर हम चिंता क्यों करें?'' कल्लसिंग और मल्लूसिंग की आज्ञा पाकर भारतसिंग वहाँ से घर की ओर निकलता है।

रहीमन चाचा इस स्थिति को बारीकी से निहारते हैं। चाचा, कल्लूसिंग और मल्लूसिंग से कहते हैं–''बाबूजी! उस लड़के के भीतर कूट–कूटकर भरी राष्ट्रीयता के प्रति त्याग, समर्पण और प्रेम को देखकर मैं काफी प्रभावित हुआ। मगर, देखिए ना, बाबूजी! उसकी मूँछें भी अभी ठीक ढंग से निकली नहीं और वह शहादत की बता कर रहा था। मगर बाबूजी! उस लड़के की बातों को सुनकर पूरे बदन में काँटे उठ खड़े हुए हैं। संस्कार है उस माता–पिता के जिन्होंने उसे जन्म दिया। मैं इस जन्म में धन्य हो गया हूँ, बाबूजी!''

''अरे भाई! यह मेरे देश की मिट्टी है, यहाँ का हर एक चीज समय आने पर राष्ट्र के लिए न्योछावर होगा।'' कल्लूसिंग कहता है।

हाँ, बाबूजी! मगर यह अस्त्र–शस्त्र जो कि बंदूक में भरी गोलियाँ...छोटी–छोटी जानों को छलनी–छलनी कर देती है...बम तो शरीर के चिथड़े–चिथड़े उड़ा देते हैं...कहीं परिवार दुख में डूब जाते हैं...युद्ध मैदानों में

लाशों के ढेर जम जाते हैं....जहाँ देखो, वहाँ रक्त ही रक्त...बाबूजी यह सब नहीं देखा जाता, जहाँ देखो वहाँ कटे–छटे अंग। क्या यह मानवीयता धर्म है?मगर बाबूजी! बिना शहादत के देशसेवा नहीं हो सकती क्या?अमन के क्या मायने है?कबतक जवान लड़कों के शव तिरंगे में लिपट–लिपटकर आते रहेंगे?न जाने कबतक हम वीर जवान अमर रहे के नारे देते रहेंगे?कबतक माताएँ अपने कलेजे पर पत्थर रखती रहेगी?जब अमन और शान्ति हर किसी को चाहिए तो फिर यह खूनी होली क्यों खेली जाती है?और हाँ, एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से चर्चा का क्या मतलब?बाबूजी! यह सब समझ के परे हैं।'' रहीमन चाचा ने कहा।

''यह सब किसे अच्छा लगता है। मगर कुछ लोग इन्सानियत और मानवीयता धर्म के दुश्मन हैं, इनकी वजह से यह सब मंजर देखने के लिए हम सब विवश हैं।'' मल्लूसिंग ने कहा।

''हम शान्ति चाहते हैं, मगर सीमा पार से आए दिन गोलियों की बौछारें और बम गोले दागे जाते हैं। बस, फिर क्या?राष्ट्ररक्षा में गोलियाँ बंदूक से खुद–ब–खुद निकलने लग जाती हैं। कल्लूसिंग ने कहा।

''जी बाबूजी! आपपर हमें सदैव अभिमान है'' रहीमन चाचा ने कहा।

कुछ समय बाद मल्लूसिंग और कल्लूसिंग वहाँ से अपने–अपने घर के लिए चल पड़ते।

आये दिन आतंकियों का आतंक सरहद पर मंडराता रहता है। एक दिन अखबार में खबर छपती है–''आतंकियों से हुई मुठभेड़ में भारतीय सेना का जवान शहीद।'' सुबह–सुबह की चाय पीने के लिए मल्लूसिंग और कल्लूसिंग रहीमन चाचा के चाय ठेले पर पहुँचते हैं। क्या हुआ चाचा! आज आपका मुँह इतना क्यों उतरा हुआ है, कोई परेशानी है क्या?'' कल्लूसिंग ने कहा।

''कुछ नहीं बाबूजी! सुना है कल सरहद पर आतंकी मुठभेड़ हुई।'' रहीमन चाचा ने कहा।

''मुठभेड़ का क्या है?वह तो रोज ही हुआ करती है। मानवीयता के दुश्मन हर बार असंभव नाजायज कोशिश करते हैं और मुँह के बल गिर जाते हैं।'' मल्लूसिंग ने मूँछ पर ताव देते हुए कहा।

''जी हाँ बाबूजी! सौ आना बात सही कही आपने।'' रहीमन चाचा ने कहा।

''रहीमन चाचा! जरा अखबार तो देना, क्या कह रहा है आज का अखबार!'' मल्लूसिंग ने कहा। मल्लूसिंग अखबार पढ़ने लग गये।

''ओ चाचा! कहाँ खो गये, एक कप चाय पिला दो जरा, बड़ी तलफ लगी है।'' कल्लूसिंग ने कहा।

कल्लूसिंग के हाथ में चाय थमाते हुए रहीमन चाचा कहते हैं–''वह लड़का शहीद हो गया।''

''कौन शहीद हो गया?'' कल्लूसिंग ने कहा।

''वही लड़का जो आपसे बात किया करता था शहादतवाली'' रहीमन चाचा ने कहा।

मल्लूसिंग की आँखें नम हुई, अखबार में छपा मिला–''आतंकी मुठभेड़ में भारतीय जवान भारतसिंग शहीद।''

मल्लूसिंग के मुख से खुद–ब–खुद वह काव्य पंक्तियाँ निकल पड़ती है, जो भारतसिंग के मुख से सुनी थी–

''अंकित है इतिहास पत्थरों पर, जिनके अभिमानों का
चरण–चरण पर चिन्ह यहाँ, मिलता जिनके बलिदानों का।''

गीतें

संदीप 'सरस'
शंकरगंज, पो–बिसवां
सीतापुर (उप्र.)
मो.–9450382515

मरण श्रेष्ठ है

मुखर वेदना को सहेजकर जीना भी कैसा जीना है
जीवन यदि जीवन्त नहीं हो, तो जीवन से मरण श्रेष्ठ है

बाधाओं के सम्मुख कैसे, नतमस्तक हो झुक जायेंगे
थककर चूर हूए भी तो क्या, हार मानकर रुक जायेंगे।

पथ के कण्टक पुष्प बनाना, पौरुष का परिचय होता है
पथ का जो गौरव दे पाये, मानूँगा वह चरण श्रेष्ठ है

जनहित जगहित मानवता से, बढ़कर कोई धर्म नहीं है
भूखे को रोटी देने से, बेहतर कोई कर्म नहीं है

व्यक्ति नहीं व्यक्तित्व अमर है, हम बदलेंगे युग बदलेगा
जीवन को अमरत्व सौंप दे, ऐसा शुभ आचरण श्रेष्ठ है

मंजिल से पहले रुक जाना, यह यात्री का काम नहीं है
जीवनपथ पर चलना जीवन,पलभर भी विश्राम नहीं है

ठहरा जल संडांध देता है, बहते रहना ही जीवन है
हर क्षण जीवनगान सुनाती सरिता का अनुसरण श्रेष्ठ है।

2, मैकू रिक्शा चला रहा है

मैकू रिक्शा चला रहा है
रिक्शा तेज चलाओ, जल्दी घर जाना है, डाँट रही है
बैठी हुई सवारी उसको, सौ टुकड़ों में बाँट रही है
पैडल खींच रहा है बाहर, मन ही न खलबला रहा है
मैकू रिक्शा चला रहा है।

हल की मूठ पकड़नेवाले हाथों ने रिक्श पकड़ा है
दो रोटी के चक्रव्यूह ने मैकू को कसकर जकड़ा है
तेज धूप है और पसीना माथे पर छलछला रहा है
मैकू रिक्शा चला रहा है।
गिरवी खेत छुड़ाने को वह, था किसान,मजदूर हो गया
गाँव छोड़कर हाय शहर में आने को मजबूर हो गया।
फुटपाथों के साये में वह सारे सपने गला रहा है।
मैकू रिक्शा चला रहा है।

कहानी

आपदा में अवसर

सुनीता पाठक
इ–16, कुशलनगर, गांधीनगर,
ग्वालियर (मप्र)
मो. 9425775207

शुभि जब अपनी प्रिय सखी नव्या के यहाँ उसकी माँ के अस्वस्थ होने की जानकारी मिलने पर पहुँची, तो नव्या डोरबेल बजने पर दरवाजा खोलते ही दरवाजे पर शुभि को बिना सूचना के अचानक मिलने आया देखकर असहज हो गई...उससे गर्मजोशी से मुखातिब होने की जगह–''आओ बैठो' कहकर अंदर की ओर देखते हुए वह बेचैन सी हो रही थी।

शुभि को उसका व्यवहार अटपटा तो लगा, लेकिन यह मानते हुए कि घर में किसी के बीमार होने पर व्यस्तता और थकान अधिक हो जाती है, तो स्नेही स्वागत की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

'मैं एक मिनट में आयी' कहकर नव्या ने सबसे पहले ड्राइंग रूम के सामने दिख रहे उस कमरे के दरवाजे को बाहर से बंद किया, जिसमें उसकी बीमार मम्मी लेटी हैं...शुभि तो उससे ही मिलने आई है...शायद दवा लेकर अभी सोई हों, तो आराम में खलल न पड़े, इसलिए उनका दरवाजा बंद करना ही उचित है, उनसे मुलाकात कुछ देर बाद या फिर कभी सही...मन को फिर से खुद ही तसल्ली दी थी शुभि ने।

''यार! बहुत थक जाती हूँ, चकरघिन्नी होते हुए...बस चाय बनानेवाली ही थी...मैं चाय लेकर ही तुम्हारे साथ बैठती हूँ...फिर डॉक्टर के पास भी जाना है।'' कहकर नव्या चाय बनाने किचन में चली गई थी।

शुभि को लगा कि वो गलत समय आ गई है, लेकिन बिना आए भी तो चैन नहीं पड़ता न...नव्या से कोई औपचारिक संबंध तो है नहीं...नव्या कामकाजी है, मिलना रविवार को ही संभव हो सकता है, इसलिए अगले रविवार का इंतजार करने की जगह आज ही आने का प्रोग्राम बनाया था। शुभि किचन में ही पहुँच गई थी...''लाओ, चाय मैं बना दूँ, तुम हॉस्पिटल जाने के लिए तैयार हो जाओ।''

''अरे! नहीं, तुम बैठो, बस अभी आई।''

''कैसी तबियत है आंटीजी की? तुमने तो फोन ही नहीं किया, मुझे तो नम्रता ने बताया कि आंटी को ब्रेन स्ट्रोक हुआ है..हॉस्पिटल में एडमिट रहीं, मुझे समय पर बताती तो मैं कुछ मदद कर पाती, तुमने ऐसे समय में बेगाना समझा'' शुभि ने उलाहना दिया।

''अरे! क्या बताऊँ, तुम भी तो अपनी सासूजी की सेवा में व्यस्त रही, तुम्हें और परेशान क्या करती, तुम्हारी सासूमाँ को तो तुम्हारी सेवा लेकर स्वर्ग में स्थान मिलना...अच्छा ये तो बताओ, अब दिल्ली में तुम्हारे पापा की तबियत कैसी है, वो उन दिनों आई सी यू में थे न!''

''अब ठीक हैं, तुम्हारे भरोसे ही तो सासू माँ को छोड़कर उन्हें देखने जा सकी थी।''

''तुम्हारी ममतामयी सासू माँ के जाने का बहुत दुख है, बहुत स्नेह करती थीं मुझे, लेकिन मम्मी के बीमार रहने से तुम्हारे पास न आ सकी।''

''कोई बात नहीं, इन औपचारिकताओं में कुछ नहीं रखा, तुमने वक्त पर सहयोग किया, ये बड़ी बात हैं।''

चाय लेकर दोनों बैठक में बैठी ही थीं कि तभी सामने के कमरे से अंदर से दरवाजा खटखटाते हुए आवाज आई–''मैडमजी! मम्मीजी चाय पीने को कह रही है।''

शुभि ये आवाज सुनकर चौंक गई, ये आवाज तो जानी पहचानी है, नव्या कोई जवाब देती, उससे पहले ही कमरे से आकर नव्या के बेटे आरव ने दरवाजा खोल दिया।

अंदर से आवाज देती हुई एक महिला बाहर आई, ''मेमजी! मम्मी जी के लिए फीकी चाय बना दूँ क्या?''

लेकिन शुभि को सामने देखकर उसके पाँव थम से गये, अब चौंकने की बारी शुभि की थी, नव्या को तो जैसे काटो तो खून नहीं, वो महिला भी संकोच के साथ 'नमस्ते भाभी' कहकर रसोई घुस गयी। एक मौन सा पसर गया था वहाँ, सच्चाई सामने थी, क्या पूछना था? क्या जवाब मिलना था? नव्या की इस चालाकी के बाद खुद की सफाई में दिये जानेवाले फिजूल के बहाने तो और दूरियाँ ही बढ़ाते।

''तुम्हें हॉस्पिटल भी तो जाना है, चलती हूँ, आंटी से फिर कभी मिल लूँगी।'' कर शुभि निकल ही रही थी कि शुभि की आवाज सुनकर आंटी ने पुकारा–''अरे बेटा शुभि! यहाँ आओ, देखो तो तुम्हारी आंटी किस हाल में पड़ी है?''

आंटी की आवाज पर शुभि को उनके पास जाना ही पड़ा। ''शुभि बेटा! बहुत कष्ट सह रही हूँ मैं, वो तो अच्छा हुआ कि तुमने माया को इतना ट्रेंड कर दिया है कि पिछले दो महीने से खूब सेवा कर रही है मेरी, तुम्हारी सास को तो कष्टों से मुक्ति मिली, पता नहीं, ईश्वर मेरी कब सुनेगा?''

''हिम्मत नहीं हारें आंटी! आप जल्दी स्वस्थ हो जाएँगी। मैं अभी चलती हूँ, फिर आऊँगी।'' खुद के मन में उठते बवंडर को थामकर उसने आत्मीयता से बात कही थी।

नव्या, मम्मी के कमरे में शुभि के साथ में नहीं आई थी, शायद तैयार होने अंदर गई हो या अब शुभि से सामना करने की मनःस्थिति में नहीं हो। शुभि आंटी से आशीर्वाद और विदा लेकर अपने घर आ गयी थी।

हमारा प्रिय ही हमें मुश्किल में डालने का कारण बन सकता है। अपने स्वार्थ के लिए हमारी सुविधाएँ छीन सकता है, कम से कम नव्या जैसी सखी के लिए तो ऐसा नहीं सोचा था। कितना भरोसा था नव्या पर, बिस्तर पर सीमित गंभीर ऑस्टी ओपोरेसिस से पीड़ित सासू माँ की सेवा करने के लिए शुभि पूरे दिन के लिए माया की सेवा ले रही थी, सासू माँ की सेवा शुभि भी दिल से कर रही थी, लेकिन बच्चों और गृहस्थी की व्यस्तता में उनके प्रति लापरवाही न हो जाए, इसलिए माया को दिन भर सासू माँ की सेवा के लिए रख लिया गया था।

एक दिन शुभि को दिल्ली में निवासरत पापा के हार्टअटैक की खबर आई–सासुजी को इस हाल में छोड़कर जाना कैसे संभव होता? बेचैन शुभि को माया ने तसल्ली दी थी–''भाभी! आप इस वक्त भाई साहब के साथ पापा के पास पहुँचो, मैं आपके लौटकर आने तक रात में भी माताजी के पास रुक जाऊँगी।''

ऐसे समय में नव्या को फोन कर उसे वस्तुस्थिति से अवगत कराकर माया का फोन नंबर उसे दे दिया था, क्योंकि सासू माँ फोन अटैंड नहीं कर पाती थी।

''अरे शुभि! बेफिक्र होकर पापा के पास जाओ, मैं हूँ ना'' नव्या ने आत्मीयता के साथ भरोसा दिया था।

''प्लीज! दिन में एक बार आकर यहाँ की खबर रखना, मैंने तुम्हारा नंबर माया को भी दे दिया है, जरूरत होने पर वो तुम्हें कॉल करेगी।''

''ओके, मैं भी माया को फोन कर हालचाल लेती रहूँगी, चिंता मत करो, निश्चिन्त होकर जाओ।''

शुभि के दिल्ली पहुँचने पर माया नेपूरी जिम्मेदारी के साथ माँ जी का ख्याल

रखा। नव्या और माया की फोन पर बात भी हो जाती थी, पापा के हॉस्पिटल से घर आने के अगले दिन ही शुभि वापस आ गई थी।

ये दुनिया की कड़वी सच्चाई है कि बच्चों का ख्याल रखते हुए मन को एक तसल्ली रहती है कि ये समय के साथ बड़े और समझदार होकर बाद में अपना ख्याल खुद रख सकेंगे, लेकिन अधिकांशत: बुजुर्ग बीमार होकर और असमर्थ होते चले जाते हैं। सासू माँ को भी अनरू बीमारियों ने घेर लिया था, स्थिति संभलने कि जगह और बिगड़ती ही जा रही थी। कुछ दिन हॉस्पिटल में रखने के बाद डॉक्टर भी कह देते थे कि अब बस आप घर में रखकर सेवा कीजिए।

शुभि उनकी ये हालत देखकर बेचैन हो जाती थी। प्यारी सासू माँ की सेवा में कोई कमी न रह जाए, इसलिए माया के साथ दिन–रात उनके आसपास ही बनी रहती थी।

तभी एक दिन माया ने अपना निर्णय सुना दिया था–''भाभी! मेरा पति अब मुझे काम पर आने से मना करता है, कहता है कि बहुत कर लिया ये बिस्तर पर पड़ी माताजी की गंदगी साफ करने का काम, हमें नहीं चाहिए ये गंदगी की कमाई, अब तुम घर बैठो।''

''लेकिन यहाँ तो तुम पिछले दो साल से आ रही हो, ये ऑब्जेक्शन अब क्यों हुआ?शुभि ने आश्चर्य से पूछा था।

''भाभी पहले माताजी सहारे से थोड़ा बहुत चलकर रोज के अपने काम कर लेती थी, अब तो सब बेड पर ही करना होता है।'',

''पहले अधिक काम न होने पर भी हमने तुम्हें सेवा के लिए रख लिया था कि जब अधिक सेवा की जरूरत होगी, तबतक तुम्हारा और उनका रिश्ता मजबूत हो जाएगा और तुम समर्पण के साथ सेवा कर सकोगी, लेकिन तुम तो जरूरत के समय ही मुँह फेर रही हो, अगर पैसे बढ़ाने की माँग हो तो ऐसा बोलो?''

''नहीं, भाभी! ये बात नहीं है, मैं पति की बात को कैसे मना कर सकती हूँ। भाभी! अब ना आ सकूँगी, मैं जा रही हूँ, माताजी! अपना ख्याल रखना, आपसे मिलने आती रहूँगी।'' कहकर माया घर से बाहर हो गयी थी। एक दृढ़ निर्णय के आगे मान मनोबल का विकल्प ही नहीं दिया था उसने।

वो सेविका थी, कभी भी जाने के लिए स्वतंत्र थी। शुभि ने भी उसके जाने के बाद सेवा में कोई कमी न रखने का संकल्प ले लिया था। तब परिस्थितियाँ भी ऐसी रहीं कि दूसरी सेविका की खोज में बाहर निकलकर कुछ पता कैसे कर पाती?सारा दिन सेवा में ही गुजर जाता था, तो सेविका ढूँढने के लिए समय ही नहीं मिलता था और फिर गंभीर बीमारी के लिए न तो कोई जल्दी से तैयार ही होता है और न ही उसपर भरोसा ही बन पाता है। आखिरकार शुभि दिन–रात तत्पर रह कर पतिदेव के साथ सेवा कार्य में जुट गयी। बार–बार गीले हाथ गलने लगे थे। दिन–रात की सेवा थकान से बोझिल और बीमार सा बना रही थी।

हारकर एक दिन उसने माया को फोन लगा ही दिया था, नो रिप्लाई रहने पर एक दो दिन बाद से ट्राई किया, लेकिन फोन को तो उठना ही नहीं था। शुभि ने गुस्से में मन ही मन कहा–''ये माया तो मोह–माया से बिल्कुल परे निकली। इतने साल के साथ के बाद भी मेरी आत्मीयता और सासू माँ की ममता से कतई जुड़ाव नहीं हुआ, असली सेवा के समय फुर्र हो गई।''

एक माह में सासू माँ की स्थिति और गंभीर होने पर 15 दिन हॉस्पिटल में आई.सी.यू. में एडमिट रहने के बाद सासू माँ स्वर्ग सिधार गई थी। अब तो शुभि एक खालीपन से भर गई थी, इतनी व्यस्तता में तो वो बाहर से कट सी गई थी। अब जब पास पड़ोस और सखियों की खोज खबर ली तो पता चला था कि नव्या की मम्मी बीमार है, इसलिए झटपट मिलने पहुँच गई थी और वहाँ जाकर देखा तो ये माया देवी उनके यहाँ सेवा दे रही हैं और सबसे बड़ी बात ये कि आंटीजी से पता भी चल गया कि पिछले दो माह से माया उनकी सेवा कर रही है। अच्छा तो ये बात थी माया के नौकरी छोड़ने की, बहाना पति की हिदायत का बनाया।

शुभि इन बातों पर विचार कर ही रही थी कि डोरबेल बजी। दरवाजा खोला तो माया सामने खड़ी थी। ''कैसे आना हुआ?तुम्हें तो हमारा फोन उठाना भी गँवारा नहीं था।'' शुभि ने ताना कसा था, वो सहज स्वागत कैसे करती?जबकि सच्चाई सामने आ गई थी।

''आपकी नाराजगी बिल्कुल भी गलत नहीं हैं, भाभी! विनाशकाले विपरीत बुद्धि। जब कोई सब्जबाग दिखाकर हावी हो जाता है, तो स्वयं की सोच कुंद हो जाती है। जब नव्या मेम आपके पापा के पास दिल्ली जाने पर रोज शाम को यहाँ आती थीं, तो मुझसे बहुत मीठी–मीठी बातें करती थीं, बहुत अच्छे से, अपनेपन से काम कर रही हो, कितनी पगार मिलती है?यहाँ क्या–क्या काम करती हो?वगैरह–वगैरह।

कुछ समय के बाद उनकी मम्मी को पैरालिसिस हुआ। मम्मीजी के हॉस्पिटल से घर आने के बाद उनकी देखभाल के लिए उन्हें सेविका की जरूरत थी। उन्होंने मुझे फोन करके एक सेविका उपलब्ध कराने की रिक्वेस्ट से बात शुरू की थी, लेकिन तुरंत ही मुझे आपके यहाँ का काम छोड़कर उनके घर आने का लालच दिया था। आपके यहाँ सात हजार रुपये मिलते थे, उन्होंने झट से दस हजार रुपये की पेशकश की थी, बढ़ी तनख्वाह किसे बुरी लगती है, फिर भी मैंने अपनी स्वीकृति नहीं दी थी। मैं माताजी को इस हालत में छोड़कर जाना नहीं चाहती थी। दो–तीन दिन बाद फिर से फोन आया था। अब सैलरी बारह हजार देने का प्रलोभन था और समझाइश भी थी कि शुभि सासू जी तो अब कुछ दिनों की मेहमान हैं, उनकी साँस थमते ही तुम भी घर से बाहर कर दी जाओगी। मैंने उन्हें बताया था कि भाभी ने मुझे हमेशा अपने घर काम पर रखने का आश्वासन दिया है। तो वो हँसकर बोली थीं कि हर चालाक मालिक अपने नौकर को इसी तरह प्रलोभन दिये रहता है। तुम्हारे गैर जरूरी होते ही उनका व्यवहार बदल जाएगा। शुभि की जिंदगी में अब सेवा का अवसर आया है, तो उसे ही करने दो न सासू माँ की सेवा, वो तो हाउसवाइफ है, मैनेज कर लेगी। मैंने अगर कोई दूसरी सेविका रख ली, तो बाद में तुम्हारे नौकरी माँगने आने पर भी मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर पाऊँगी। माना कि शुभि बहुत अच्छी हैं, तो मैं भी बुरी नहीं हूँ। सोच लो, तुम्हारा काम देखकर मैंने पैसे भी नहीं देखे, मैं नौकरी करती हूँ, इसलिए तुम्हें हमेशा साथ रखूँगी, ये भी तुम्हें बताना जरूरी है!

नव्या मेम ने तो जैसे मेरा मन ब्रेन वॉश ही कर दिया था। उनकी बात मुझे सही लगी। पैसे के लालच किसे नहीं होता, भाभी! और माताजी भी अब दिन पे दिन कमजोर होती जा रही थीं, उनके जाने के बाद फिर?बेनौकरी होने से अच्छा है कि में इस अवसर को न छोड़ूँ, इसलिए मैंने इस सच्चाई को छुपाकर पति का बहाना लेकर आपके यहाँ आने में असमर्थता बताई थी। हम सेविकाएँ जिस घर में काम छोड़ते हैं, बाद में उसकी खबर रखते हैं कि अब किसे काम पर रखा है, कितनी पगार पर रखा। आपके बारे में पता चला कि अब आप अकेले बहुत परेशान हो रही हो तो मन में ग्लानि भी थी, लेकिन वहाँ मुझे अपना भविष्य नजर आ रहा था, इसलिए दो बार आपका फोन भी नहीं उठाया था।

मैंने बहुत गलती की, भाभी! आपने हमेशा बहुत ख्याल रखा। चाय, नाश्ता, खाना, कपड़ा सबकी चिंता की। अपने हाथों से बना गरम खाना खिलाया, टी.वी. देखना, पंखे कूलर की हवा में रहना, माताजी के मीठे किस्से–ये सब नौकरानी होने का नहीं, बल्कि घर के सदस्य होने का अहसास देती थी। आपका काम छोड़कर वहाँ जाते ही दो–तीन दिन में ही मुझे नौकर होने के सारे कायदे समझा दिये गये। नव्याजी को भाभी नहीं, मेम कहना है। साफ–सफाई, खाना बनाने में वो मेरी पूरी मदद लेती हैं। लेकिन मुझे अपना

खाना खुद ले आना होता है। परिवार के एक साथ खाते समय हमारे कमरे का दरवाजा बंद कर दिया जाता है। माताजी के कमरे में टी.वी. नहीं है, पंखा बहुत धीमे, कूलर तो वो बिल्कुल भी नहीं चलाने देती हैं। एक दिन के नागे (छुट्टी) में मेम सैलरी काट लेती है। कहती हैं कि जब तुम्हारे न आनेवाले दिन, सेवा हमने की तो पैसा तुम्हें कैसे दे दें? आपकी आत्मीयता का जिक्र तो नव्या मेम का कहना था कि शुभि को नौकर रखने का सऊर ही कहाँ है। ऐसे लोग ही तो नौकरों को सिर पर बैठाकर उनका दिमाग खराब करते हैं और हिदायत दी थी कि शुभि जब भी मिलने आए तो कहना कि अभी चार पाँच दिन पहले ही यहाँ नौकरी माँगी है, वो तो माताजी ने आपके सामने सच्चाई कहकर, उनके झूठ को सामने नहीं आने दिया। काम का समय भी बढ़ा दिया है। उन्होंने आपपर आई आपदा को खुद के लिए अवसर ढूंढ लिया। आपके मायके जाने, मेरा फोन नंबर उनके पास आ जाने को अपनी सुविधा के लिए उपयोग किया। उनका आपकी आपदा में अपने लिए अवसर देखना, उनके लिए तो सुखद रहा, लेकिन बढ़ी तनख्वाह का लालच और लंबे समय नौकरी के भरोसे की आस मेरे लिए सुखद नहीं रही। ये अवसर मेरे लिए तो आपदा ही बन गया, भाभी! मैं आपकी गुनहगार हूँ, मुझे माफ कर दीजिए'' कहकर राने लगी थी माया।

''इस तरह दुखी मत हो माया, सच कहूँ तो तुम्हारा यूँ अचानक काम छोड़कर जाना, मेरे लिए आपदा ही था, लेकिन मन को अब बहुत तसल्ली है कि इस कारण में माताजी के अंत समय में उनके पास अधिक से अधिक रह पायी। उनकी इत्मीनान से सेवा करने का पुण्य लाभ का अवसर मुझे मिल सका। तुमने मुझे आपदा में अवसर प्रदान किया, नव्या ने मेरे मुश्किल हालात में मदद कर अपने लिए अवसर खोजा और तुमने मुझे मेरी आपदा में अकेला छोड़कर अवसर ढूंढा। मैंने इस आपदा में सेवा धर्म की तसल्ली पाई, नव्या ने अपनी सखी का विश्वास खोया। अब उसे मुझसे आँखें चुरानी पड़ रही हैं। तुमने मन की ग्लानि भाव के साथ आत्मीयता खोकर केवल नौकर होने का अहसास पाया। ये हम सभी के लिए सबक हैं कि आपदा में अवसर ढूंढते समय केवल दिमाग की ही नहीं, बल्कि अपने कोमल से दिल की भी सुनना चाहिए, जिससे ये आपदा में अवसर हमारी अंतरात्मा को भी शुकून दे सके।

हास्य व्यंग्य

लोन ले लो लोन

मदन गुप्ता सपाटू,
सेक्टर 10, पंचकुला,
चंडीगढ़ (हरियाणा)
मो.–9815619620

एक वक्त था, जब हमने दिवाली मनाने के लिए एक सरकारी बैंक के अनगिनत चक्कर लगाए थे मात्र 1500 के फेस्टिवल लोन पाने के लिए। मैनेजर साहब ने चप्पलें घिसवा दी थी और लोन होली के नजदीक जाकर सैंक्शन हुआ था।

आज गली–गली आवाजें आ रही है–'लोन ले लो लोन... सस्ता लोन, आसान किस्तों पर लोन...बिना गारंटी के लोन..कम दरों पर लोन...।'

गली से फुरसत मिलती है तो मोबाइल चालू हो जाता है। आप किसी से शोक प्रकट करने के लिए कॉल मिला रहे हैं तो उधर से मधुर आवाज आने लगती है–'नमस्कार! क्या आपको लोन की जरूरत है?' इधर बंदा झुंझला जाता है। जिस चीज की जरूरत है...उसके बारे में कोई पूछता तक नहीं...लोन की जरूरत है? अरे भाई लोगो...बहन जी ओ!..40 पार हो गया हूँ...आपमें से किसी ने कभी पूछा ...किसी मैरिज ब्यूरो ने नहीं पूछा कि एक अदद बीवी की जरूरत है?'

एक समय था जब कर्ज लेना समाज में एक अपमान समझा जाता था। लड़के की शादी करते समय कई रिश्तेदार या दुकानदार भांजी मार देते थे–''अरे लाला! फलां बैंक या फलां साहूकार का कर्जाई है।'' कई बार इतनी सी बात पर अच्छा भला रिश्ता गुल्ल हो जाता था।

कभी कर्ज लिया जाता था। अब कर्ज दिया जाता है। प्रोइवेट बैंक लोन देने पर आमदा है। सिर पर कफन बाँधकर बैठ जाते हैं सवेरे–सवेरे। बंदा टायलेट में मोबाइल लिये सिक्रेट मैसेज या फोटो देखने में लीन होता है, तो बीच में कॉल आ जाती है–''सर! आपको लोन चाहिए? वह ऐसे मौके पर झुंझलाकर आखिर चिल्ला बैठता है–लोन नहीं, चूर्ण चाहिए...। मोबाईल में डाल दे।''

उधर से मधुर ध्वनि को कोई फर्क नहीं पड़ता ऐसे जोक्स से वह चालू रहती है–'सर! हम आसान किस्तों पर कार लोन देते हैं। बंदा परेशान होकर कहता है कि मेरे पास आलरेडी कार है। उधर से सजेशन आती है, तो सर! कार बदल लो। पेट्रोल डीजल महँगा हो रहा है। आप इलेक्ट्रिक कार का लेटेस्ट वर्जन ले लो। एक रुपये में एक किलोमीटर की एवरेज पड़ेगी। बंदा टायलेट के हाफ टाइम में ही बाहर आ जाता है, जैसे पिक्चर हॉल में, इंटरवल होने पर लोग कैंटीन की तरफ भागते हैं।

थोड़ी देर में एक काल और टपक पड़ेगी। आप समझेंगे कि बॉस से कोई अच्छी खबर आनेवाली है। परन्तु उधर से वही ढाक के तीन पात–''सर! थ्री बी.एच.के., के रेडी फॉर मूव फ्लैट्स हमारी कंपनी बिना किसी शर्त के दे रही है। बैंक लोन अवेलेबल है। नो गारंटी...नो डिपोजिट, नो एडवांस..बस साइन करिए अपने फुली फनिश्ड फ्लैट में घुसिए।''

अभी जरा सा वक्त बीतता है। उधर से फोन आ जाता है–''क्या आपका बच्चा कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका में पढ़ने जाना चाहता है, तो हम आपको एजुकेशन लोन, वीजा में सहायता कर सकते हैं। हमारा एक्जीक्यूटिव आज ही आप और आपके नूरे चश्म के दर्शन करने को बेताब हैं। बंदा सोचता है कि नालायक यहाँ रिक्शा चलाने लायक नहीं...कनाडा में ट्रॉला तो चला ही लेगा और बापू अपना खेत बेच डालता है।

टेलीफोन पर आप जितना मर्जी कहो कि आपको लोन की जरूरत नहीं, फिर भी मधुर ध्वनि के पाश में कितने ही लोग फँस जाते हैं। पहले दादा कर्ज लेता था, पोता लौटता था। आजकल इसी जन्म में लौटाना पड़ता है। जब लोन देते हैं, तो बंदा फटाफट 100 कागजों पर दस्तखत मार देता है। बारीक अक्षरों में कंडीशन अप्लाई मोटा लैन्ज लगाकर भी आप नहीं पढ़ सकते।

आप अपनी ईमेल खालें या मोबाइल ऑन करें तो रोजाना आपको कम से कम 10 मेल या नोटिफिकेशन्ज ऐसी मिलेंगी, जिसमें आपकी हैसियत से कहीं ज्यादा लोन पहले से ही अप्रूव्ड आ जाएगा। एक बार तो आप का सीना भी गर्व से फूल जाता है, जब आप पढ़ते हैं–आपका पचास लाख का लोन सैंक्शन कर दिया गया। मान न मान लोन तेरा मेहमान, बिन साइन हम तेरे।

जब कर्ज वापस करने में कोई किस्त लेट हो जाती है, तो बड़े–बड़े मूँछधारी आपकी सेवा में हाजिर हो जाते हैं। जरा सी चूं चां की तो आज की डेट में इनके गुर्गे ठुकाई–पिटाई, कार उठाई में गुरेज नहीं करते।

लोन बस दूर से दिखता है। जैसे श्रीलंका को चीन का...।

कहानी :

कैक्टस

रानी श्रीवास्तव
ऐसोसिएट प्रोफेसर,
जन्तु विज्ञान विभागाध्यक्ष, ईस्ट पटेलनगर, पटना
(बिहार) मो.–9934836793

''तुम क्या करोगी अस्पताल जाकर?तुम्हें तो कोरोना पॉजिटिव होने के बाद भी उसके हलके–फुलके लक्षण हैं। घर पर रहकर डॉक्टर से पूछकर दवा खाना अधिक सुरक्षित है तुम्हारे लिए।''

महेशजी ने इस ठीक बात को भी चिल्लाते हुए कहा और हाँफने लगे।

उनकी पत्नी विनीता ने जल्दी से उन्हें थोड़ा गर्म पानी पिलाया और उनके चिड़चिड़ेपन को नजरअंदाज कर बोली–''मैंने अस्पताल में बात की है। कोरोना पॉजिटिव होने के कारण आपके साथ मुझे भी भर्ती कर लेंगे। अगल–बगल में बेड भी खाली है।

विनीता ने नम्र होकर समझाते हुए कहा–''देखिये, कोविड के कारण आपका ऑक्सीजन लेवल कम हो रहा है। ऊपर से डॉक्टर ने कैथेटर के लिए भी कहा है, आपके यूरिन प्रॉब्लेम के कारण। मैं साथ रहूँगी तो डॉक्टर, नर्स को, वहाँ के बाकी स्टाफ को जरूरत पड़ने पर बुलाती रहूँगी। आपके छोटे–मोटे काम भी कर दूँगी। आजकल अस्पतालों में इतने मरीज हैं कि सभी जगह डॉक्टर, नर्स और स्टाफ की कमी ही रहती है। जब मुझे भी जगह मिल रही है, तो मैं क्यों ना चलूँ?आपको भी मेरी चिंता नहीं रहेगी।''

थोड़ी ना–नुकूर करने के बाद महेशजी मान गये, क्योंकि विनीता की बातें सही लगीं उन्हें। वैसे भी, प्रेमविवाह न होने पर भी इन दोनों के बीच पूरी लड़ाई और पूरी नोक–झोंक इनके बीच में भरपूर प्रेम के गवाह थे। महेश जी को भी तो मन ही मन अकेले अस्पताल जाने की इच्छा नहीं ही थी। ऐसा तो वो अपनी पत्नी की सुरक्षा के लिए बोल रहे थे। अभी के भयावह समय में जबतक बहुत जरूरी न हो, अस्पताल नहीं जाना चाहिए। विनीता ने महेशजी से कहा–''आपके सामान पैक कर देती हूँ।''

''चलना है तो तुम अपना सामान रखो। मेरा तो छोड़ ही दो। मेरी आधी चीजें रखोगी, आधी भूल जाओगी। हाँ, इतना करना कि एटीएम कार्ड दोनों रख लेना।''

अपने पति की बातों पर विनीता चुप ही रही। यूनिवर्सिटी प्रोफेसर थे डॉक्टर महेश प्रसाद। उनकी विद्वत्ता की धाक थी। दो साल हो गये रिटायर किये। अब तो सब जगह घूमते थे। खूब पढ़ते थे। इधर बीमारी और कमजोरी के कारण बहुत गुस्सा करने लगे थे।

महेशजी ने एक छोटे ब्रीफकेस में अस्पताल से ठीक होकर लौटते वक्त पहनने के लिए एक जोड़ी कपड़े, अपना आधारकार्ड, हिसाब लिखनेवाली डायरी, पूजा की किताब, मोबाईल का चार्जर और कुछ कैश वगैरह रख लिया। विनीता ने भी अपनी चीजें पैक कर लीं।

उनके दोनों बेटा–बहू विदेश में रहते थे। छोटी बहू को पिछले महीने ही बच्चा हुआ था। वो लोग कोशिश करके भी उनके पास नहीं आ सके थे। उनकी जान–पहचान के दो–तीन विद्यार्थियों ने गाड़ी का इंतजाम कर दिया और ये लोग अस्पताल पहुँच गये। अस्पताल प्राइवेट था और घर से थोड़ी दूर पर था। वहाँ रजिस्ट्रेशन के लिए बैठे–बैठे तीन घंटे के बाद इनका नंबर आया। फॉर्म भरने के बाद पैसा जमा करवाना था, तो विनीता जी ने एटीएम कार्ड स्वाइप करने के लिए दिया। एडमिशन के समय प्रति व्यक्ति पचास हजार लगने थे। कार्ड स्वाइप हुआ। महेशजी को भर्ती कराने का कागज मिल गया। लेकिन विनीता के फॉर्म के साथ जब एटीएम कार्ड दिया तो कार्ड स्वाइप ही नहीं हो रहा था। मशीन एटीएम कार्ड से। एक दिन में पचास हजार ही ले रहा था। महेशजी ने कहा–''विनीता! दूसरा कार्ड निकालकर दो। वह दूसरे बैंक का है। उससे हो जाएगा।'' विनीता ने दूसरे कार्ड के लिए पूरा पर्स खंगाल डाला। दूसरा एटीएम कार्ड मिला ही नहीं। रुआँसी होकर काउंटर पर पूरा पर्स उलट दिया। किन्तु तब भी दूसरा कार्ड नहीं मिला। वह उनके दूसरे पर्स में था और विनीता घर पर उसमें से कार्ड निकालना भूल गई थी।

महेशजी अब तक काफी थक चुके थे। उन्होंने काउंटर पर पूछा–''घर जाकर दूसरा एटीएम ला सकते हैं हमलोग?''

काउंटर पर बैठे व्यक्ति ने कहा–''नहीं, अब नहीं हो पाएगा। आपको तो अभी एडमिट हो जाना होगा, सर! मैडम को अब परसों बैड मिल जाएगा। क्योंकि इस बीच एक बहुत गंभीर मरीज को बेड दे दिया गया। कल कोई बेड खाली नहीं है।'' रजिस्टर देखते हुए उसने फिर सपाट स्वर में कहा।

महेशजी को अंदर ले जाया गया और विनीता उनको तबतक देखती रहीं, जबतक वह अस्पताल के गलियारे में दिखते रहे।

घर लौटते–लौटते विनीता पस्त हो चुकी थीं। पति को फोन किया तो लगा नहीं। शाम हो गयी और उनके बारे में कुछ पता नहीं चल रहा था। कई बार एक दूर के रिश्तेदार, जो उसी अस्पताल में डॉक्टर थे, उनको भी कॉल किया, लेकिन उन्होंने कॉल नहीं उठाया। भरोसा तो जो परिचित डॉक्टर थे, बहुत दिलाया था, पर उनसे भी सहायता की कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही थी। डॉक्टर लोग भी तो परेशान ही चल रहे थे। डॉक्टर तो इलाज करते–करते खुद कोरोनाग्रस्त होकर काल के गाल में समा रहे हैं। मन ही मन सोच रही थी महेशजी की पत्नी विनीता।

अचानक रात के आठ बजे उनके रिश्तेदार डॉक्टर विनोद ने कॉल किया और कहा–''मामी! मैं कोविड वार्ड नहीं जा पाया, लेकिन फोन करवाया था। आज शाम में उनको कैथेटर लग गया, इलाज भी शुरू हो गया।''

विनीता हताश थीं। पता नहीं, दिन के एक बजे ही उनको अंदर ले जाया गया और इलाज कब जाकर शुरू हुआ। विनीता को कुछ भी ठीक नहीं लग रहा था। रात में दस बजे आसपास विनीता को अपने पति से बात हुई तो वो बहुत कमजोर आवाज में धीरे–धीरे कुछ बोल रहे थे। उन्होंने जो कुछ भी कहा, विनीता को समझ में नहीं आया।

किसी तरह रात कटी। सुबह–सुबह विनीता ने अस्पताल में फोन किया, अपने पति से मिलने के लिए तो अस्पताल वालों की तरफ से बताया गया कि मरीज से मिलने के लिए कोविड–19 वार्ड में जाने की अनुमति नहीं है।

''खैर, कल तो मुझे बेड मिल जी जाएगा, तब मैं उनकी हालत क्या है, ठीक से देख सकूँगी।''

घर का काम करते–करते दिन के दो बज गये थे, लेकिन अभी तक महेश जी से बात नहीं हुई थी।

विनीता खुद भी सरकारी नौकरी से ऑफिसर होकर रिटायर हुई थीं। शुरू से ही विद्यार्थियों के सामने महेश जी को सर ही संबोधित करती आई थीं। विनीता उदास भी थीं, चिंतित भी, लेकिन निराश नहीं थी। उन्हें कल की प्रतीक्षा थी। ब्रीफकेस वैसे ही तैयार रखा हुआ था और दोनों एटीएम कार्ड भी एहतियात से पर्स के अंदरवाले चेन में रखकर दो बार चेक कर लिया था। पैसों की कोई दिक्कत नहीं थी। दोनों पति–पत्नी को रिटायरमेंट के बाद अच्छे पैसे मिले थे। शाम के साढ़े पाँच बजे थे और विनीता कप से धीरे–धीरे चाय पी रही थी और

सोच रही थी, इस वायरस से ग्रसित होने में कहीं ना कहीं वो लोग खुद ही दोषी हैं। कुछ तो लापरवाही हुई है, लेकिन कहाँ?

निचले तल्ले पर रिपेयरिंग का काम बहुत दिनों तक लंबित था। राज–मजदूर पुराने थे और कई बार उन्होंने कहा कि उन लोगों को अभी कोई रोजगार नहीं मिल रहा है। अभी काम करवा लेते तो कुछ पैसा हो जाता और काम भी पूरा हो जाता। लेकिन महेशजी कोई रिस्क लेना नहीं चाहते थे। डायबिटिक होने के कारण वह अतिरिक्त सतर्कता बरतते रहे थे। फिर भी, उन लोगों के बार–बार आग्रह करने पर वह मान गये और खूब हिदायत देकर काम शुरू करवा दिया। विनीता चाहतीं तो मना कर सकती थीं, लेकिन उन्हें भी कोई खतरेवाली बात नहीं लगी।

''हाथ साबुन से धोते रहना है, मास्क लगाना है, ऊपर नहीं आना है, वगैरह–वगैरह सभी हिदायतों का पालन हो रहा था।।'

सारे काम ठीक से ही हो रहे थे, लेकिन लगता है रुपयों के लेन– देन में या सामानों की रसीद वगैरह लेने में कुछ चूक हो गई। मेड को भी हटा दिया था। सारी चीजें सैनिटाइज्ड होती थीं, तब भी पता नहीं कैसे क्या हुआ...तभी मोबाइल बज उठा। विनीता ने लपककर मोबाइल उठाया और विनोदजी का नंबर देखा तो आशा से भर उठी।

''हलो विनोदजी! सर कैसे हैं?बहुत अच्छा किया, जो कॉल किया। आपके कॉल का इंतजार कर रही थी, क्योंकि एकमात्र आप ही हैं, जिनसे सर का समाचार मिलता है।''एक साँस में बोल गई विनीता।

उधर से थोड़ी देर तक एक चुप्पी तारी रही। थोड़ी देर बाद आवाज आई–''मामी! मामा नहीं रहे?''

''क्या?'' जोर की चीख के साथ विनीता धम्म से जमीन पर गिर गई और फूट–फूटकर रोने लगीं। अगल–बगल के घरों की खिड़कियों पर चेहरे उग जाए, लेकिन वे दुख भरे चहेरे गमगीन थे, मायूस थे, लेकिन सजगता की विवशता से जकड़े हुए थे।

जमीन पर लोट–लोट कर रोती विनीता को आकर उठाने, उनके आँसू पोंछने या दिलासा देने की हिम्मत किसी को नहीं हुई। खिड़कियों पर टंगे चेहरे मानो गमलों में उगे पौधे थे, जो चलकर नहीं आ सकते थे। कैसा क्रूर समय। एक कोरोना वायरस ग्रस्त परिवार के घर जाने की हिम्मत कोई करे भी तो कैसे?

विनीता को महसूस हुआ कि उनकी एक भूल ने उनके चारों तरफ कैक्टस उगा दिये थे। कैक्टस के जंगल के बीच बैठी विनीता शून्य में देख रही थी और पैरों

लघुकथा :

प्यारा का बँटवारा नहीं

सतीशचन्द्र मिश्र
कोबरा, चित्रकूट (उप्र)
मो.9451018508

आज रघु के पापा को आगा–पीछा, साये की तरह लगना, सपना को अच्छा लग रहा था और कुछ अजीब भी। ऐसा तो जब वह पहली बार आई थी, तब भी करते थे। लेकिन रघु के हो जाने के बाद, किशन से आशकी, वह समझ नहीं पा रही थी।

वह झपककर लकड़ी के बहाने घर की मिट्टी से बनी सीढ़ी के अटारी पर चढ़ गई।

अटारी अब क्षत–विक्षत थी, क्योंकि यहाँ भी बंदरों को आतंक से खपरैल चूने से, कच्चे घर की ऐसी–तैसी थी।

मौका देखकर रघु का बाप किशन भी चढ़ गया।

सपना ने कहा–''अम्मा–बापू हैं, फिर रात में तो पास ही रहते हैं।''

वह जानना चाहती थी कि इनके दिल में आखिर क्या चल रहा है?

किशन ने कहा–''मुझे बात करनी है अभी।''

सपना ने कहा–'आखिर इतना जरूरी क्या है?फिर किसी ने रोका है क्या?'' हाँ, नहीं तो क्या! जबसे रघु हुआ, तुम बदल गई हो, मेरे पास खड़ी तक नहीं हो सकती, आखिर बात क्या है?कहकर किशन फफक–फफककर रो पड़ा।

अब सपना ने लकड़ियाँ फेंक दी और किशन से लिपटकर वह भी रो पड़ी।

सपना ने आँसुओं के बीच कहा–'मेरी जान! आपको गलतफहमी किसलिए है?क्या चाहते हैं आप?

किशन ने हिचकियों के साथ कहा–''मैं तुमसे आप क्यों हो गया?मैं आप नहीं हूँ। मुझे तुम्हारा बनावटी नहीं, ऑरिजिनल प्यार चाहिए, मैं तुम्हारी दूरी, उपेक्षा नहीं बर्दाश्त कर पाऊँगा।''

सपना समझ गई। उसे समझाया–''मेरी जान! मेरी जान हो तुम। मेरी हर साँस हो तुम, मेरे शरीर में दौड़ता खून हो तुम, तुम दूर कहाँ हो?मेरी देह का रोम–रोम तुम्हारा है। तुम मेरे प्यार को कभी नहीं तरस सकते, तुम्हारा अधिकार है मुझपर। तुम्हारे प्यार का बँटवारा नहीं हो सकता कभी भी।''

किशन सपना को आँखें फाड़कर देख रहा था। सपना, अपने आँचल से आँसू पोंछ डाले, एक वात्सल्य में भरी माँ की तरह। नारी का एक रूप यह भी होता है।

सपना ने कहा–''जन्म देनेवाले माँ–बाप को प्यार देना मेरा कर्तव्य था। फिर ससुराल में सास–ससुर को प्यार करना, बच्चों को प्यार करना ही तो स्त्रीधर्म है। यह हर संस्कारी नारी का अलग रूप, अलग प्यार है। लेकिन तुम्हारे प्यार में कोई बँटवारा नहीं और तो कर्तव्य प्रेरित प्यार है। सब में बँटवारा हो सकता है, लेकिन पति–पत्नी के प्यार में बँटवारा मंजूर नहीं। हर पत्नी की ख्वाहिश होती है कि पति के बाहों में उसका ही दीदार करते हुए इस दुनिया से अलविदा होऊँ।''

किशन की आँखों में अविरल आँसू निकल रहे थे, लेकिन यह खुशी के आँसू थे और संतुष्ट अपनी सपना को चूमकर, मर्यादा का ख्याल रखते हुए अटारी से नीचे उतर गया।

लघुकथाएँ

सत्य शुचि
साकेत नगर, ब्यावर (राजस्थान)
मो.–9413685820

1. धुलाई की बख्शीश

धूल से सनी बस थी वह। उस रोज स्थानीय रोडवेज डिपो में बस चालक व डिपो प्रबंधन इसी बात पर आमने–सामने हो गये। डिपो से बस का समय सुबह आठ बजे का था, लेकिन बसचालक पारसनाथ जब बस लेने कार्याशाला पहुँचा तो बस साफ धुली नहीं मिली। चालक द्वारा उसी समय संबंधित कर्मचारियों से शिकायत की, जिस पे संबंधित कार्मिकों ने बस की धुलाई का दावा किया था, वही चालक द्वारा दैनिक डिफेक्ट रिपोर्ट में आरजे 14 पीई5264 के बाहर से गंदगी होने तथा उसकी धुलाई करवाये जाने की शिकायत की थी। इसके बावजूद कार्यशाला प्रबंधक उत्तेनिया से बस की सफाई न करवा रूट पर अन्य बस को भेज दिया गया। प्रबंधक का कहना था कि बस की जाँच करवाई थी। वह अंदर से साफ थी, हालाँकि बस के बाहर थोड़ी धूल–सी जमी थी। चालक द्वारा बस नहीं ले जाने के बहाने बनाए जा रहे थे। तभी चालक के खिलाफ अनुशासनहीनता की कार्यवाही उन्हें माकूल–उचित लगी।

मगर चालक का कथन था कि मुख्यालय के आदेशानुसार हमें साफ–सुथरी बस को रूटमार्ग पर ले जाने के आदेश हैं।... उनके द्वारा आपत्ति उठाने के बाद डिपो प्रबंधन ने अन्य बस को रूट पर भिजवाया और तो और प्रबंधक ने बस का बगैर धुलाई किये ही कागजों में उनका धुलाई होना दर्शाया–बतलाया था।

और अभी कार्यशाला प्रबंधक के इस रवैये से वह अपने को काफी खफा दुखी महसूस करने लगा।

यदि जाने–अनजाने में उस धूल से सनी बस से कोई होनी–अनहोनी हो जाती तो...। और खड़े–खड़े वह दहल उठा।

हकीकत में, उसकी कर्तव्यनिष्ठा पर ए.पी.ओ (पदस्थापन की प्रतीक्षा) आदेश उसे भारी पड़ गये।

अब सीधे तौर पर कहा जाए कि एक ऐसे जाल में जा फँसा है, जहाँ सिवाय उसे परेशानियों के कुछ भी हासिल होनेवाला नहीं है। किन्तु.. .किन्तु, वह उस वक्त सच्चाई से भी कैसे मुकर सकता था। और वह फफककर रह गया।

2. किस्मतवाले

नौकरी में अपनी–अपनी व्यस्तताएँ थीं। शादी के आठ साल गुजर गए, तो एक दिन उन्होंने एक दूसरे की आँखों को झाँकते हुए पूछा–''क्या हम दो के दो ही रहेंगे'' और वह बड़े मायूस हो चले थे।

मगर सहसा समय ने करवट ली, तेईस मार्च से ही वह घर में ही थे और दोनों एक–दूजे के निकट भी। तिस पर एक अंतरंगता की महक रफ्ता–रफ्ता घर भर में घुलने मिलने लगी। उस दिन अचानक पत्नी की तबीयत बिगड़ी थी। तत्क्षण उसने महसूस किया कि जल्द से उन्हें किसी अच्छे डॉक्टर से परामर्श लेना चाहिए।... और त्वरित ही एक क्लिनिक में पत्नी की सारी जाँचे कराने के बाद तुरंत ही पति का संशय धूमिल–सा होने लगा।

''देर आए, दुरुस्त आए..।'' पति बुदबुदाया।

''क्या कह रहे हो?'' पत्नी ने पलटकर पूछा।

''कुछ नहीं...।'' एकबारगी टालने की मंशा से वह फूटा।

''बताइए तो सही...क्या बताया है चैकअप में डॉक्टर ने?'' उसमें भीतरी जिज्ञासाएँ उफान पर थीं।

''तुम्हें अपनी सेहत पर अब पूरा ध्यान देने की जरूरत है, समझी।''

''वो तो है ही...।''

''लेकिन, साथ ही आगे से तुम्हें एहतियात भी बरतने होंगे।''

''क्यों..., आखिर क्यों?''

''अरे भई!...तुम पेट से हो।''

''क्या...?'' वह अवाक् सी मुस्कुराई, ''तो फिर ये लॉकडाउन हमारे जीवन में...।''

''हाँ–हाँ, बिल्कुल सच कह रही है...यह लॉकडाउन हमारी भावी खुशियों का संदेश–संकेत भी है!'' कहते–कहते उसने पत्नी को अपने आगोश में समेट लिया, तत्पश्चात् पत्नी उसी क्षण खिलखिलाकर रह गई।''

3. प्लास्टिक झाड़ू

उस रोज बाथरूम में उसका काफी वक्त जाया हुआ था और ज्यों ही वह बाहर निकली, त्योंही हतप्रभ सी उसकी नजर माँ पर जा टिकी थी। माँ बेसुध–सी पलंग पर थी और यत्र–तत्र उसकी लैट्रिन के छींटे–निशान उसकी आँखों में खुभ गये, सच में, माँ की त्वचा पर लैट्रिन सूख–सी चली थी।

उन क्षणों में तुरंत मुँह पर कपड़ा लपेटकर उसने माँ के मल–द्वार के आस–पास लैट्रिन की सूखी परत को हटाने की सोची, चुनांचे, मल–द्वार के नीचे एक खाली प्लास्टिक टप लगाया जा चुका था।

देखते ही देखते एक हाथ में प्लास्टिक झाड़ू से हल्के–हल्के वह लैट्रिन को कुतरने लगी और दूसरे हाथ से प्लास्टिक डिब्बे से पानी बूँद–बूँद धीमे–धीमे माँ की चमड़ी पर वह गिराती डालती रही। हवा में नमी बरपी थी और कुछ समय में ही माँ के मल–सफाई का काम निपटा लिया था। निश्चय ही माँ अभी दर्द की एक गहरी पीड़ा से जरूर कराही थी।

...हकीकत में, प्लास्टिक का झाड़ू, क्या माँ के लिए ही बचा था। उसने सोचा, हाँ–हाँ..., सही अर्थों में यह बिल्कुल गलत नहीं था। आखिर माँ की साफ–सफाई के चक्कर में बार–बार बाथरूम के चक्कर लगाने से वह बचना तो चाहेगी...।

तुरंत ही तीव्र गति से माँ के गंदे कपड़ों को बहू ने समेटे–उठाए और क्षणों में क्षितिज की ओर निहारकर वह बुदबुदाई, ये ऊपरवाले या कि कुदरत का कोई कमाल–चमत्कार ही मानो–समझो कि माँ उसे हिस्से में मिली।

अब वह एक आत्मतुष्टि से हर्षित–तर हो गई।

लघु शोध :

हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक स्वरूप

शंकरलाल माहेश्वरी
आगूचा, भीलवाड़ा
(राजस्थान)
मो.–9413781610

किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी संस्कृति से होती है और वहाँ की भाषा उस संस्कृति की संवाहक है। भाषा से जीवन व्यवहार चलता है। सृष्टि में मनुष्य ही एकमात्र प्राणी है, जो अपने भावों को व्यक्त करने के लिए वाणी द्वारा शब्द और विचार सम्प्रेषित करता है।

हिन्दी खड़ी बोली के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र माने जाते हैं, जिन्होंने हिन्दी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा था–''निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल।'' किसी भी देश की एकता, अखंडता, सांस्कृतिक अस्तित्व की रक्षा में उस देश की भाषा का विशेष योगदान रहता है। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है, जो अन्य समस्त भारतीय भाषाओं में सर्वाधिक वैज्ञानिक है।

वर्ष 1991 में भारत के संविधान की अनुसूची में केवल 14 भाषाएँ अनुसूचित की गई थी, जो इस प्रकार है–
1. असमीस, 2. बंगाली, 3. गुजराती, 4. हिन्दी, 5. कन्नड़, 6. कश्मीरी, 7. मलयालम, 8. मराठी, 9. उड़िया, 10. पंजाबी, 11. संस्कृत, 12. तेलगू, 13. तमिल, 14. उर्दू।

वर्तमान में संविधान में 22 भाषाओं का उल्लेख है। संविधान संशोधन के कारण 8 भाषाएँ और जोड़ दी गई, जो निम्नांकित है–
1. सिन्धी, 2. मणिपुरी, 3. बोडो, 4. मैथिली, 5. कोंकणी, 6. नेपाली, 7. डोंगरी, 8. संस्थाली।

सन् 1961 की जनगणना में जब भारतीय भाषाओं की गणना की गई तो देखा गया कि भारत में लगभग 1952 भाषाएँ बोली जाती थी। इसके बाद 1971 की जनगणना के अनुसार भारतीय भाषाओं की संख्या केवल 109 भाषाएँ ही प्रचलन में थीं। बाद में 2011 की जनगणना के अनुसार देश में प्रचलित भाषाओं की संख्या 121 हो गयी। वस्तुतः भारतीय संविधान की अनुसूची में केवल 22 भाषाएँ ही मान्य हैं। माना जाता है कि अन्य सभी भाषाएँ हिन्दी भाषा में समाहित हो गयी हैं। हमारा दुर्भाग्य है कि संविधान में वर्णित कोई भी राष्ट्रीय भाषा नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 343 (1) में यह प्रावधान रखा है कि केन्द्र की भाषा हिन्दी होगी, परन्तु अनुच्छेद 343 (2) के प्रावधान के कारण अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी के बजाय अंग्रेजी भाषा केन्द्र में चली आ रही है, क्योंकि चिकित्सा तथा केन्द्र और राज्यों के बीच पत्राचार में अंग्रेजी भाषा को सहज–सुगम माना गया है।

इतना सब कुछ होते हुए भी जो वैज्ञानिकता हिन्दी भाषा में निहित है, वह अन्य किसी भी भाषा में नहीं है, जिसका लिखना –बोलना समरूप है। हिन्दी भाषा में प्रयुक्त वर्णों का क्रम पूर्णतः वैज्ञानिक है, जो देवनागरी लिपि में इस प्रकार वर्णित है–
क ख ग घ ङ (कवर्ग)
च छ ज झ ञ (चवर्ग)
ट ठ ड ढ ण (टवर्ग)
प फ ब भ म (पवर्ग)
य र ल व श ष स ह क्ष त्र ज्ञ

इस प्रकार कुल 36 वर्ण होते हैं तथा स्वरों की संख्या 12 है। इस प्रकार कुल 48 स्वर–व्यंजन की संख्या होती है।

उक्त वर्णों का क्रम पूर्णतः वैज्ञानिक है। जिस प्रकार 'क' का उच्चारण स्थान 'क' ही होगा, क्योंकि कंठ से निकलनेवाली सबसे छोटी ध्वनि 'क' ही है। वस्तुतः 'क' के उच्चारण से लगभग 98 प्रतिशत का समय उसकी ध्वनि में ही लग जाती है। यहाँ 'क' मूल अक्षर है, जो कंठ से उत्पन्न होता है। इसी प्रकार ओष्ठ से 'प' की ध्वनि निःसृत होती है, जो ओष्ठ से बोली जानेवाली सबसे छोटी ध्वनि है। यह व्यवस्था अंग्रेजी भाषा में नहीं है। वहाँ त थ द नहीं बोल सकते। त के स्थान पर ट ही बोल पाते हैं। श ष स का बोलना तो अंग्रेजी में और भी कष्टकर है। यदि बच्चों को अभ्यास कराया जाए तो 36 ही वर्ण आसानी से उच्चरित हो सकते हैं।

देवनागरी लिपि के स्वर रोग निवारक भी हैं हिन्दी और अनेक भारतीय भाषाओं की लिपि को देवनागरी कहा जाता है। इस लिपि के उद्भव के विषय में कहा जाता है कि एक बार नटराज महेश्वर ने नृत्य करते हुए डमरु बजाया तो उससे सूत्र प्रकट हुए, जो माहेश्वर सूत्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं सूत्रों में से देवनागरी का उद्भव हुआ, इस लिपि के बारह स्वर अत्यन्त कल्याणकारी, मंगलमय व स्वास्थ्य लाभ प्रदान करनेवाले हैं–

अ–इस स्वर का उच्चारण कंठ से होता है। जितनी बार आप 'अ' का उच्चारण करेंगे, उतनी ही बार हृदय की गति का संचालन तीव्रता से होगा, जिससे रक्त शुद्ध हो जाता है।

आ–इसके उच्चारण से दमा–खाँसी के रोग अच्छे होते हैं। फेफड़े उत्तेजित होकर शुद्ध होते हैं, नियमित अभ्यास से ऊपरी तीन फसलियों में बल दाब ज्यादा होता है।

इ ई–इसका प्रभाव गले व मस्तिष्क पर होता है, इसलिए गले, नाक और हृदय के ऊपरी भाग विशेष रूप से उत्तेजित होता है, इसके उच्चारण से कफ तथा आँतों मे जमा हुआ मल निकल जाता है और ये भाग स्वस्थ हो जाते हैं।

उ ऊ–इसका प्रभाव यकृत, पेट और आँतों पर पड़ता है। इसके नियमित अभ्यास से पेट का भाग कम होता है, स्त्रियों के पेडु रोग में यह बहुत लाभकारी है। गर्भाशय स्वस्थ व सबल बनता है।

ए ऐ–इसके उच्चारण अभ्यास से गुर्दे स्पंदित होते हैं तथा मूत्र संबंधी रोग दूर होते हैं।

ओ औ–इसका नियमित अभ्यास आँतों तथा नसों को शुद्ध करता है। जननेन्द्रिय पर भी इसका उत्तम प्रभाव पड़ता है।

अं–बीज मंत्रों में इसका उपयोग होता है। देर तक घंटानाद की तरह उच्चारण करते रहने से शरीर के समस्त विकार दूर होते हैं। इसके उच्चारण से छाती व गले को पुष्टता मिलती है तथा हृदय के लिए भी मंगलकारी है।

अः–इसके उच्चारण से मस्तिष्क, कंठ और हृदय को लाभ पहुँचता है।

स्वर के उच्चारण के लिए सुगमावस्था में बैठकर रीढ़ को सीधा रखे। मुख बंद करके नाक से साँस पूरी व गहरी लें। उसके बाद उच्चारण करें। धीरे–धीरे श्वास रोकने का अभ्यास करें, यह क्रिया भोजन के पूर्व करना चाहिए। स्वरों के उच्चारण के साथ श्वास निकलते रहे, इस प्रकार इन स्वरों के नियमित अभ्यास से अनेक रोगों का निवारण संभव है। (नारायण स्मृति)

मानवमात्र कुल 36 प्रकार की ध्वनि का ही उच्चारण कर सकता है, इससे अधिक नहीं। जैसे ओष्ठ से निकलनेवाली ध्वनि प फ ब भ म और उ ऊ के अलावा कोई भी वर्ण ओष्ठ से बोलना संभव नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के मुँह से जो कंठनाल है, वह कंठ के निकट सिकुड़ जाती है। कवर्ग के इन पाँचों अक्षरों को बोलते समय कंठनाल कंठ के पास सिकुड़ जाती है, इसीलिए कवर्ग कांठ्य कहा जाता है। इसी प्रकार चवर्ग का प्रत्येक वर्ण तालू स्थल से उच्चरित होता है। इसलिए तालू स्थान से उच्चरित होनेवाले वर्णों को तालव्य कहा जाता है। इसी प्रकार टवर्ग के वर्णों के लिए मूर्धा का उपयोग होता है, अतः यह वर्ग मूर्धन्य कहलाता है। तवर्ग को दन्त्यवर्ग कहा जाता है। प्रत्येक 5–5 वर्णों में समाहित है, इस प्रकार वर्णों का क्रम हिन्दी भाषा के अतिरिक्त किसी भाषा में नहीं है। प्रत्येक वर्ग का क्रम निश्चित है। जैसे–पहले कंठ, तालू, मूर्धा, दन्त, ओठ समस्त वर्गों के स्थापित वर्णों का उच्चारण कंठ से लेकर ओठ तक के प्रयोग से ही निर्धारित है, जिनका शारीरिक क्रम भी है। कवर्ग से लेकर पवर्ग तक के प्रथम से चतुर्थ स्तम्भ जैसे क ख ग घ का उच्चारण उक्त वर्णित स्थान से ही होगा। अर्थात् क च ट त प वर्ग के लिए क्रमशः कंठ, तालू, मूर्धा, दन्त व ओष्ठ पर्याप्त है। किन्तु अंतिम स्तम्भ के लिए कंठ+नासिका, तालू+नासिका, मूर्धा+नासिका, दन्त+नासिका, ओष्ठ+नासिका का प्रयोग होता है। जब हम बोलने लगते हैं, पेट की वायु को मुँह की तरफ से ऊपर की ओर धक्का देती है और वायु मुख से जिस–जिस हिस्से से टकराती है, वैसी–वैसी ध्वनि निकलती है। 5 स्तम्भ ङ ञ ण न म। इन 5 स्तम्भों के किसी भी अक्षर को नासिका बंद कर प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ स्तम्भ का कोई भी अक्षर नासिका के दोनों छिद्रों को बंद करके बोलेंगे तो सहज व सरलता से उच्चरित कर पायेंगे।

हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का चोली–दामन का संबंध है। भाषा और लिपि मनुष्य के भावों और विचारों के सम्प्रेषण के माध्यम से हैं। लिपि और भाषा का अन्योन्याश्रित संबंध है। भाषा में जो ध्वनियाँ श्रव्य रूप में प्रस्तुत होती है, वही लिपि में दृश्य रूप में प्रयुक्त होती है। मौखिक भाषा में लिपि द्वारा ही लिखित रूप प्रदान किया जाता है। देवनागरी लिपि विश्व की समस्त लिपियों में सर्वाधिक वैज्ञानिक मानी जाती है। संयुक्त राष्ट्र संघ की 6 अधिकारिक भाषाओं में से एक भी भाषा ऐसी नहीं है, जिसको बोलनेवालों की संख्या हिन्दी से अधिक है। 9 करोड़ फ्रेंच बोलनेवाली आबादी संयुक्त राष्ट्रसंघ में पहुँच चुकी है। जबकि एक अरब से अधिक बोलनेवालों की हिन्दी अभी तक वहाँ नहीं पहुँच पाई है। आज भी अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में और मॉरीशस के विश्वविद्यालयों में पीएच.डी. तक का शोधकार्य हिन्दी में हो रहा है। सऊदी अरब, जापान आदि देशों में हिन्दी पढ़ाई होती है। इंग्लैंड में अंग्रेजी के बाद हिन्दी का स्थान है। इतना व्यापक प्रभाव और प्रसार होते हुए भी हिन्दी भाषा को सर्वमान्य नहीं किया गया, यह एक विडम्बना है। शासन और प्रशासन को पूरे मन से दृढ़ संकल्प के साथ और इच्छाशक्ति से इस दिशा में सशक्त प्रयास करना होगा।

तुर्की की एक घटना है। जब कमालपाशा ने तुर्की को राष्ट्र भाषा बनाने का निर्णय लिया तो उन्होंने आमंत्रित विद्वानों की सभा में पूछा, ''तुर्की कितने दिनों में चलने लगेगी?'' विद्वानों का उत्तर था 15 वर्षों में। कमालपाशा बोले, ''समझ लो 15 वर्ष पूरे हो गये। कल से तुर्की भाषा में काम होना चाहिए।''

इस लिपि द्वारा वर्णमाला के प्रत्येक वर्ण को अलग–अलग लिखा जा सकता है–

- समस्त व्यंजनों के अंत में 'अ' निहित है। इससे वर्ण संयोग की विधि वैज्ञानिकता पूर्ण है।
- इस लिपि में संक्षिप्तता होती है
- यह लिपि उच्चारण की सरलतम प्रणाली है
- ध्वनि चिह्न प्रत्येक वर्ण के लिए अलग–अलग है
- सभी वर्णों का उच्चारण सहजता से संभव है।
- उच्चारण के आरोह–अवरोह में जहाँ मधुरता है, वहीं कठोर बलाघात भी निहित है
- वर्णों का क्रम व्यवस्थित तथा सुसंबद्ध है।
- इसमें पहले स्वर तथा बाद में व्यंजन का आविर्भाव होता है।
- इस लिपि में ह्रस्व एवं दीर्घ का क्रम पूर्णतः वैज्ञानिक है। एक ध्वनि के लिए एक ही लिपि चिह्न प्रयुक्त होता है।
- इसमें वर्णों की लिखावट सुंदर और कलात्मक होती है।
- इस लिपि में लचीलापन रहता है।
- यह लिपि पढ़ने में सहज व सरल है।
- इसकी आकृति सुस्पष्ट है तथा उच्चारण भी सरल है।
- नागरी लिपि के जाननेवाले विश्व में सबसे ज्यादा है।
- यह लिपि समस्त भाषाओं के लिए उपयुक्त एवं उपयोगी है।
- हिन्दी में शब्दों की प्रचुरता है।
- हिन्दी जैसी बोली जाती है, वैसी ही लिखी जाती है।
- हिन्दी की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से है, अतः शब्द प्रचुर मात्रा में है।
- हिन्दी में एक शब्द के कई समानार्थी शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं।
- हिन्दी भाषा में अन्य भाषा की अपेक्षा स्वर तथा वर्णों का बाहुल्य है।

देवनागरी लिपि की विशेषताओं के संबंध में कहा गया है कि ''भाषा के बिना संस्कृति पंगु है, तो संस्कृति के अभाव में भाषा अंधी है और लिपि के बिना दोनों ही निष्प्राण है।

–डॉ. मनोज कुमार पांडेय

डॉ. दामोदर खड़गे के अनुसार–''भाषा तो पुल है, बरसाती नदियों में उफान आता है और उतर जाता है। भाषा मजबूत पुल है। हिन्दी एक ऐसा पुल है, जो सारी भारतीय भाषाओं के आवागमन के लिए साधक की तरह खड़ा है। क्षेत्रीय भाषाएँ अपने–अपने मार्गों से आकर हिन्दी के महामार्ग में पहुँचती है।''

''भाषा केवल विचारों की अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण का सर्वाधिक सशक्त माध्यम ही नहीं, अपितु व्यक्ति के व्यक्तित्व व समाज की पहचान, राष्ट्र का गौरव, आत्मसम्मान और आत्मगौरव का प्रतीक है।''–डॉ. उषा सिन्हा

भाषा का सांस्कृतिक महत्व प्रतिपादित करते हुए कविवर रवीन्द्र नाथ टैगोर कहते हैं–''यह भाषाएँ शतदल कमल की पंखुड़ियाँ जैसी है और हिन्दी इसकी मध्यम मणि है। हिन्दी भाषा से हमारी भारतीय संस्कृति एवं धर्म की कड़ियाँ गहरी जुड़ी हुई है। यही कारण है कि संतों और भक्तों के पद व वाणी हिन्दी के माध्यम से आज भी घर–घर में बसी है। राष्ट्रीयता, भारतीयता, एकता और अखंडता हिन्दी का मूल स्वर है।

हिन्दी ही एक ऐसी शालीन व समृद्ध भाषा है कि जिसका किसी भी क्षेत्रीय भाषा से विरोध नहीं है, बल्कि भारतीय भाषाएँ एक दूसरे की बहिनें हैं। राष्ट्रीय महत्व के कामकाज यदि जनता की भाषा में होंगे तो देश की व्यवस्थाएँ अधिक पारदर्शी होंगी। हिन्दी भाषा हमारे माथे की बिन्दी स्वरूप है, इसी से ही जन जीवन में समरसता और संवाद में सहजता का प्रादुर्भाव होगा, दूरियाँ समाप्त होंगी और नजदीकियाँ को विस्तार मिलेगा।

समीक्षा

मरजीना

दयानन्द जायसवाल

'मरजीना' क्षणिका संग्रह जेन्नी शबनम, दिल्ली की यह कृति जीवन के यथार्थ से जुड़ी विविध पक्षों को बड़ी खूबसूरती के साथ प्रस्तुत करती है। कवयित्री की यह तीसरी पुस्तक है, जो सच्ची और अच्छी भावनाओं का सुंदर दस्तावेज है, जिसमें एक कोमल भावभूमि की प्रस्तुति है। अपनी संस्कृति और अतीत के वैभव के लिए अटूट आस्था और विश्वास है तथा एक सकारात्मक दृष्टिकोण है, जो आज हाथ से फिसलता जा रहा है। इनका यह काव्य संग्रह एक दिशा बनाता है कि जहाँ हम जन्मे हैं, जिसकी मिट्टी में पलकर बड़े हुए हैं, वह भूमि हमारे लिए सर्वोपरि है।

'मरजीना' शब्द ही अपने आपमें बहुत ही इच्छा और खूबसूरत है, जिसे लोग काफी पसंद करते हैं। यह मजबूत व्यक्तित्व को दर्शाता है। यह शब्द अरबी भाषा के 'मर्जान' से बना है, जिसका अर्थ ही छोटा मोती है। संग्रह का हर मोती कवयित्री ने सागर की गहराई से चुन–चुनकर लाया है। जेन्नी शबनम जी को विद्यालयी जीवन से ही लिखने–पढ़ने तथा सर्जनात्मक कार्यों की अभिरुचि रही है। इनको इनकी माता का आशीर्वाद रहा है, उन्हें भी हिन्दी के प्रति काफी रुचि थी।

भावनाओं की दृष्टि से 'मरजीना' की काव्यधारा जब विभिन्न तटों का स्पर्श करती हुई बहती है, तो रास्ते में जो ठहराव मिलते हैं, वो इन खंडों में विभक्त हैं–'रिश्ते', 'स्टैचू बोल दे', 'जी चाहता है', 'अंतर्मन', 'सवाल', 'स्वाद/बेस्वाद', 'इश्क', 'कहानी', 'समय–चक्र', 'सच', 'घात', 'बेइख्तियार', 'औरत', 'साथी', 'तुम', 'समय' और 'चिंतन'। इनकी पहली क्षणिका 'मरजीना' से पंक्ति यहाँ उद्धृत है–

''मन का सागर दिन–ब–दिन और गहरा होता जा रहा
दिल की सीपियों में कैद मरजीना बाहर आने को बेकल
मैंने बिखेर दिया उन्हें कायनात के बरक पर।''

हिन्दी साहित्य में क्षणिकाएँ भी बेहद प्रचलित हैं। क्षण की अनुभूति को शब्दों में पिरोकर साहित्यिक रचना ही क्षणिका होती है अर्थात् मन में उपजे गहन विचार को कम शब्दों में इस प्रकार बाँधना कि कलम से निकले हुए शब्द सीधे पाठक के हृदय में उतर जाए। इसे हम छोटी कविता भी कह सकते हैं। जीवन अनुभव जितना विराट और वैविध्य होगा, क्षणिकाएँ उतनी ही अधिक प्रभावी होगी।

कवयित्री बड़ी सरलता से क्षणिका का सहारा लेती हुई समाज को संदेश दे रही है, जो जीवन के व्यावहारिक पक्ष से संबंधित सिद्धांत, नीति अथवा अनुभवसिद्ध तथ्य की पुष्टि करते हैं। इससे जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव व्यक्त होता है–

''खौफ़ के साये में जिंदगी को तलाशी हूँ
ढेरों सवाल हैं पर जबाव नहीं
हर पल हर लम्हा एक इम्तिहान से गुजरती हूँ
कमबख्त ये ज़िंदगी मौका नहीं देती।''

जीवन अनुभवों की गहराइयों में उतरकर कविता रचती कवयित्री में संक्षिप्तीकरण की अद्‌भुत क्षमता है। नारी जीवन की अनेक विडम्बनाओं, आशाओं, निराशाओं, मन के भावचित्रों, अनुभूतियों, कल्पनाओं और यथार्थों का जो वर्णन मानवीय संबंधों के माध्यम से व्यक्त की हैं, इस प्रकार हैं–

''स्त्री की डायरी उसका सच नहीं बाँचती
स्त्री की डायरी में उसका सच अलिखित छपा होता है
इसे वही पढ़ सकता है, जिसे वह चाहेगी
भले ही दुनिया अपने मन माफ़िक
उसकी डायरी में हर्फ अंकित कर ले।''

ग ग ग ग ग

''रिश्तों की कशमकश में जेहन उलझा है
उम्र और रिश्तों के इतने बरस बीते
मगर आधा भी नहीं समझा है
मगर आधा भी नहीं समझा है
फ़क़त एक नाते के वास्ते
कितने–कितने फ़रेब सहे
घुट–घुट कर जीने से बेहतर है
तोड़ दें नाम के वह सभी नाते
जो मुझे बिल्कुल समझ नहीं आते।''

इन पंक्तियों में एक गहन अनुभूति पीड़ा व संवेदना निहित है तथा रिश्तों की विसंगतियों और मजबूरियों में निजी जीवन की आहुति दे दी जाती है। इसमें आंतरिक संत्रास, अंतर्द्वन्द्वऔर घुटन की अभिव्यक्ति है, जो समाजिक जीवन के प्रति विद्रोह को स्पष्ट करता है। हमारा जीवन एक अनबुझ पहेली है। इसमें कई तरह के सवाल हैं, जो अनेक अर्थों को प्रतिपादन करता है। जीवन समाप्त हो जाता है, पर सवाल रह जाते हैं'

''सवालों का सिलसिला
तमाम उम्र पीछा करता रहा
इनमें उलझकर मन लहूलुहान हुआ
पाँव भी छिले चलते–चलते
आखरी साँस ही आखरी सवाल होंगे।''

साहित्य में प्रेम का विषय हमेशा प्रासंगिक रहा है। यह सबसे शुद्ध और सबसे खूबसूरत एहसास है, जिसे प्राचीन काल से गाया जाता रहा है। इसकी अनुभूति से हमारा अनुभव रूपांतरित होता है और प्रत्येक वस्तु में दिव्यता तथा आध्यात्मिकता का आविर्भाव होता है। प्रेम स्वयं में व्यापक, विराट व शक्तिशाली अनुभूति है। इसके जागृत होते ही आत्मा की तत्काल अनुभूति हो जाती है। प्रेम की अनुभूति जाग्रत होने से पहले सब कुछ निर्जीव, आनंद रहित व जड़ है। किन्तु इसके जागृत होते ही सब कुछ प्रफुल्लित, दिव्य, चैतन्य और आलोकमय हो जाता है। इसलिए कवयित्री कहती है–

''अल्लाह! एक दुआ कबूल करो
कयामत से पहले इतनी मोहलत दे देना
दम टूटे उससे पहले
इश्क का एक लम्हा दे देना।''

संग्रह की अन्य कविताएँ भी विविध भाव व्यक्त करती हैं। भावनाओं के अलावा काव्य सृजन के मामले में भी उत्कृष्ट हैं, भाषा में प्रवाह है तथा शिल्प–सौंदर्य है।

प्रकाशक–अधिकरण प्रकाशन, दिल्ली
मो.–9716927587
कवयित्री 'जेन्नी शबनम'–9810743343

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303